ICN : H-109/2012

खरीफ फसलों की खेती

संपादक

अभय कुमार व्यास
दिनेश कुमार
ध्यान सिंह राणा

प्रकाशन सहयोगी

मोनिका वासन
सी.बी. सिंह

कृषि प्रौद्योगिकी सूचना केन्द्र एवम्
सस्य विज्ञान संभाग
भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान
नई दिल्ली–110 012

प्रथम संस्करण : फरवरी 2012

संपादन
अभय कुमार व्यास
दिनेश कुमार
ध्यान सिंह राणा

प्रकाशन सहयोगी
मोनिका वासन
सी.बी. सिंह

सर्वाधिकार सुरक्षित

मुद्रित : 1000 प्रतियाँ

मूल्य : 30 रुपये

सस्य विज्ञान संभाग एवं कृषि प्रौद्योगिकी सूचना केन्द्र, भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली – 110 012 के लिए संयुक्त निदेशक (प्रसार) द्वारा प्रकाशित व मै. वीनस प्रिंटर्स एण्ड पब्लिशर्स, बी 62/8, नारायणा इन्डस्ट्रियल एरिया, नई दिल्ली – 110 028; फोनः 45576780, मोबाईलः 9810089097 द्वारा मुद्रित।

विषय सूची

फसल	लेखक का नाम	संभाग का नाम	पृष्ठ सं.
धान	दिनेश कुमार	सस्य विज्ञान	1
	डा. ए.के. सिंह	आनुवंशिकी	
	डा. सुभाष चन्द्र	कीट विज्ञान	
	डा. यू.डी. सिंह	पादप रोग	
मक्का	डा. अशोक कुमार	सस्य विज्ञान	15
	डा. मदन पाल	सस्य विज्ञान	
ज्वार	डा. अशोक कुमार	सस्य विज्ञान	20
	डा. मदन पाल	सस्य विज्ञान	
बाजरा	डा. के.एस. राणा	सस्य विज्ञान	28
	डा. पुष्पेन्द्र कुमार	सस्य विज्ञान	
अरहर	डा. बी. गंगैया	सस्य विज्ञान	33
	डा. ओमपाल सिंह	सस्य विज्ञान	
मूंग	डा. वाई.एस. शिवे	सस्य विज्ञान	38
उड़द	डा. बी.जी. शिवकुमार	सस्य विज्ञान	44
	श्री नैन सिंह	सस्य विज्ञान	
लोबिया	डा. एल.के. इदनानी	सस्य विज्ञान	48
	डा. अशोक कुमार	सस्य विज्ञान	
मूंगफली	डा. डी.एस. राणा	सस्य विज्ञान	53
सोयाबीन	डा. ए.के. व्यास	सस्य विज्ञान	59
	डा. बी.जी. शिवकुमार	सस्य विज्ञान	
तिल	डा. टी.के. दास	सस्य विज्ञान	64
	डा. डी.एस. राणा	सस्य विज्ञान	
अरंडी	डा. डी.एस. राणा	सस्य विज्ञान	69
कपास	डा. ए.आर. शर्मा	सस्य विज्ञान	74
चारा ज्वार	डा. शिवाधर	सस्य विज्ञान	83
चारा बाजरा	डा. शिवाधर	सस्य विज्ञान	87

प्राक्कथन

भारतवर्ष में कृषि का स्थान निर्विवाद रूप से प्रमुख है। देश की लगभग दो तिहाई जनसंख्या कृषि एवं कृषि आधारित उद्यमों पर निर्भर है। कृषि उत्पादन को भारतीय अर्थव्यवस्था की धुरी माना जा सकता है, क्योंकि अच्छे कृषि उत्पादन वाले वर्षों में अर्थव्यवस्था को अधिक सुदृढ़ पाया गया है। देश में टिकाऊ फसल उत्पादन, खाद्य सुरक्षा का मुख्य आधार है। समुचित खाद्य सुरक्षा को बनाए रखने के लिए प्राकृतिक संसाधनों का अनुकूलतम उपयोग आवश्यक होता है। ठोस वैज्ञानिक सिद्धान्तों एवं क्रियाओं पर आधारित फसल उत्पादन द्वारा ही खाद्य, पोषण एवं पर्यावरण सुरक्षा को प्राप्त किया जा सकता है। बढ़ती हुई जनसंख्या के कारण अनेक प्रकार की चुनौतियाँ सामने आ रही हैं। खाद्य सुरक्षा बनाए रखने के लिए प्रति इकाई क्षेत्र में उत्पादन वृद्धि ही एक मात्र साधन है जिसके द्वारा हम बढ़ती हुई जनसंख्या को भोजन उपलब्ध करा सकते हैं।

खरीफ फसलों का देश के कुल खाद्यान्न उत्पादन में आधे से अधिक योगदान होता है। खरीफ फसलों में धान, मक्का, ज्वार, बाजरा, अरहर, मूँग, उड़द, सोयाबीन, मूँगफली, तिल, कपास आदि प्रमुख हैं। फसलों के उत्पादन में उपयुक्त सस्य विधियाँ अपनाकर उत्पादन – लागत में कमी एवं प्रति इकाई उपज में वृद्धि की जा सकती है। अनुसंधान परिणामों से ज्ञात हुआ है कि अधिक उपज देने वाली किस्मों की उत्तम गुणवत्ता का स्वस्थ बीज, संतुलित पोषक तत्व प्रबंधन, दक्ष खरपतवार प्रबंधन, समुचित जल, कीट एवं रोग प्रबंधन, उपयुक्त समय पर फसल की कटाई एवं मड़ाई तथा उपयुक्त भंडारण इत्यादि अपनाकर किसान भाई लागत कम करके उत्पादन में बढ़ोतरी कर सकते हैं। अतः प्रस्तुत पुस्तिका में 15 फसलों के उत्पादन की आधुनिक वैज्ञानिक विधियों के विभिन्न पहलुओं को उद्धरित किया गया है। भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान का हमेशा से ध्येय रहा है कि फसल उत्पादन की नवीनतम तकनीकों का विकास कर किसानों तक प्रभावी रूप से जल्द से जल्द पहुँचाए। इसी क्रम में ''खरीफ फसलों की खेती'' पुस्तिका का प्रकाशन तैयार किया गया है। आशा है यह पुस्तिका किसानों एवं कृषि प्रसार से जुड़े साथियों के लिए उपयोगी सिद्ध होगी।

संस्थान के सस्य विज्ञान, आनुवंशिकी, पादप रोग विज्ञान एवं कीट विज्ञान के संभागाध्यक्ष एवं वैज्ञानिक इस सराहनीय कार्य के लिए धन्यवाद के पात्र हैं। साथ ही पादप रोग संभाग के डा. एस. सी. दुबे, प्रधान वैज्ञानिक एवं कीट रोग विज्ञान संभाग के डा. राकेश शर्मा, प्रधान वैज्ञानिक के सहयोग की सराहना की जाती है। मैं डा. अभय कुमार व्यास, संभागाध्यक्ष, सस्य विज्ञान, डा. दिनेश कुमार, वरिष्ठ वैज्ञानिक, डा. ध्यान सिंह राणा, प्रधान वैज्ञानिक, डा. अम्बरीष कुमार शर्मा, प्रभारी, कृषि प्रौद्योगिकी आंकलन एवं स्थानान्तरण केन्द्र एवं डा. मोनिका वासन, प्रभारी, कृषि प्रौद्योगिकी सूचना केन्द्र, डा. सी.बी. सिंह, तकनीकी अधिकारी एवं श्रीमती सीमा चोपड़ा, प्रभारी,, हिन्दी प्रकाशन इकाई के अथक प्रयासों के कारण किसानों एवं प्रसार कार्यकर्ताओं के लिए उपयोगी प्रकाशन तैयार कर प्रकाशित करवाने के योगदान की प्रशंसा करता हूँ जिन्होंने इस प्रकाशन को पूरा करने में भरपूर योगदान दिया है ।

हरि शंकर गुप्त

(हरि शंकर गुप्त)
निदेशक
भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान
नई दिल्ली – 110 012

धान

जलवायु

धान मुख्यतः उष्ण एवं उपोष्ण जलवायु की फसल है। धान को उन सभी क्षेत्रों में सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है जहां 4–6 महीनों तक वायु का औसत तापमान 21^0 से. अथवा इससे अधिक रहता है। फसल की अच्छी बढ़वार के लिए $25–30^0$ से. और पकने के लिए $20–25^0$ से. तापमान उपयुक्त होता है। रात्रि का तापमान जितना कम रहे, फसल की पैदावार के लिए उतना ही अच्छा है लेकिन 15^0 से. से नीचे नहीं गिरना चाहिए।

मृदा

धान की खेती के लिए अधिक जलधारण क्षमता वाली मृदाएं जैसे – चिकनी, मटियार या मटियार–दोमट मृदा प्रायः उपयुक्त होती हैं। मृदा का पी.एच. मान प्रायः 5.5–6.5 उपयुक्त होता है। यद्यपि धान की खेती 4 से 8 अथवा इससे भी अधिक पी.एच. मान वाली मृदाओं में की जा सकती है, परंतु सबसे अधिक उपयुक्त मृदा पी एच 6.5 वाली मानी गई है। क्षारीय और लवणीय मृदाओं में मृदा सुधारकों का समुचित उपयोग करके धान को सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है।

फसल चक्र

उत्तरी भारत की गहरी मृदाओं में धान काटने के बाद आलू, बरसीम, चना, मसूर, सरसों, लाही अथवा गन्ना आदि को उगाया जाता है। उत्तरी भारत के मैदानी क्षेत्रों में सिंचाई, बाजार आदि की सुविधा उपलब्ध होने पर एक वर्षीय फसल चक्र –

धान–गेहूं–लोबिया / उड़द / मूंग	(एक वर्ष)
धान–सब्जी मटर–मक्का	(एक वर्ष)
धान–चना–मक्का+लोबिया	(एक वर्ष)
धान–आलू–मक्का	(एक वर्ष)
धान–लाही–गेहूं	(एक वर्ष)
धान–लाही–गेहूं–मूंग	(एक वर्ष)
धान–बरसीम	(एक वर्ष)
धान–गन्ना–गन्ना पेड़ी–गेहूं–मूंग	(तीन वर्ष)
धान–गेहूं	(एक वर्ष)
धान–सब्जी मटर–गेहूं–मूंग हैं।	(एक वर्ष)

उन्नत किस्में

धान की खेती के लिए अपने क्षेत्र विशेष के लिए उन्नत किस्मों का ही प्रयोग करना चाहिए जिससे कि अधिक से अधिक पैदावार ली जा सके। इसके लिए कुछ प्रमुख किस्में निम्न हैं –

अगेती किस्में (110–115) : इनमें मुख्य रूप से पी एन आर–381, पी एन आर–162, नरेन्द्र धान–86, गोविन्द, साकेत–4 एवं नरेन्द्र धान–97 आदि किस्में प्रमुख हैं। इनकी नर्सरी का समय 15 मई से 15 जून तक है तथा इनकी औसत पैदावार लगभग 4.5 –6.0 टन/हेक्टेयर तक है।

मध्यम अवधि की किस्में (120–125 दिन) : इनमें मुख्य किस्में सरजू–52, पंत धान–10, पंत धान–12, आई आर–64 आदि प्रमुख हैं। इनकी औसत उपज लगभग 5.5–6.5 टन/हेक्टेयर है।

लम्बी अवधि वाली किस्में (130–140 दिन) : इस वर्ग में पूसा 44, पी आर 106, मालवीय–36, नरेन्द्र–359, महसुरी आदि प्रमुख किस्में हैं। इनकी औसत उपज लगभग 6.0–7.0 टन/हेक्टेयर है। इन किस्मों के अतिरिक्त देश के विभिन्न भागों में लगाई जाने वाली कुछ प्रमुख किस्में जैसे आई आर 36, एम टी यू 7029 (स्वर्णा), एम टी यू 1001 (विजेता), एम टी यू 1010 (काटन डोरा संहालू), बी पी टी 5204 (साम्भा महसुरी), उन्नत सांभा महसुरी (पत्ती के झुलसा रोग के प्रतिरोधी), ललाट, ए डी टी 43 आदि हैं।

संकर किस्में : इनमें प्रमुख रूप से पंत संकर धान–1, के आर एच 2, पी एस डी 3, जी के 5003, पी ए 6444, पी ए 6201, पी ए 6219, डी आर आर एच 3, इंदिरा सोना, सुरूचि, नरेन्द्र संकर धान–2, प्रो. एग्रो. 6201, पी एच बी –71, एच आर आई –120, आर एच 204 संकर किस्में हैं। हाल ही में विश्व का प्रथम बासमती संकर धान पूसा राईस हाइब्रिड–10 (पी आर एच –10) पूसा, नई दिल्ली में विकसित किया गया है।

पूसा संस्थान द्वारा विकसित धान की प्रमुख किस्मों का उल्लेख सारणी 1 में किया गया है।

सारणी 1. पूसा संस्थान द्वारा विकसित धान की प्रमुख किस्में

(क) सिंचित अवस्था के लिए सुगंधित एवं बासमती धान की किस्में

किस्म	अनुमोदित वर्ष	अनुमोदित क्षेत्र/परिस्थिति	उपज (क्विं/है.)	विशेषताएं
पूसा बासमती–6 (पूसा 1401)	2008	देश के बासमती धान उगाने वाले समस्त क्षेत्र/सिंचित अवस्था में बुआई के लिए	55–60	धान की यह मध्यम बौनी किस्म है जो पकने पर गिरती नहीं है। दानों की समानता व पकाने की गुणवत्ता के हिसाब से यह किस्म पूसा बासमती 1121 से बहुत ही अच्छी है, क्योंकि इसका दाना पकाने पर एक समान रहता है। इसमें बहुत अच्छी सुगंध आती है तथा दूधिया दानों की संख्या 4 प्रतिशत से कम है।

उन्नत पूसा बासमती–1 (पूसा 1460)	2007	देश के बासमती धान उगाने वाले समस्त क्षेत्र/सिंचित अवस्था में बुआई के लिए	50–55	यह अधिक उत्पादन देने वाली झुलसा रोग प्रतिरोधी प्रजाति है। यह किस्म 135 दिनों में पककर तैयार हो जाती है। पकाने में इसके दानों की गुणवत्ता बहुत अच्छी है और इसमें दूधिया दानों की संख्या 10 प्रतिशत से कम पाई गई है।
पूसा बासमती–1121	2005	बासमती धान उगाने वाले समस्त क्षेत्र/सिंचित अवस्था में खेती के लिए	40	बासमती धान की यह किस्म 140–145 दिनों में पक जाती है जो तरावड़ी बासमती से एक पखवाड़ा अगेती है। इसका दाना लम्बा (8.0 मि.मी.) व पतला है जो गुणों में तरावड़ी बासमती से अच्छा है। यह कम लागत में उच्च गुणवत्ता युक्त निर्यात योग्य अधिक उपज देने वाली किस्म है।
पूसा सुगंध–5 (पूसा 2511)	2005	पंजाब, हरियाणा, दिल्ली, पश्चिमी उत्तर प्रदेश और जम्मू कश्मीर/सिंचित अवस्था में खेती के लिए	60–70	इस किस्म का दाना अच्छी सुगंध वाला एवं अधिक लम्बा होता है। यह किस्म झड़ने के प्रति सहिष्णु है। यह गाल मिज, भूरे धब्बे की प्रतिरोधी है तथा पत्ती लपेट व ब्लास्ट के प्रति मध्यम प्रतिरोधी है। यह किस्म 125 दिनों में पककर तैयार हो जाती है।
पूसा सुगंध–3	2001	पंजाब, हरियाणा, दिल्ली, पश्चिमी उत्तर प्रदेश और उत्तराखंड/सिंचित अवस्था में खेती के लिए	60	यह धान की अर्ध बौनी, अधिक उपज देने वाली, बासमती गुणों से परिपूर्ण किस्म है। इसका दाना लम्बा, बारीक और सुगंधित है जो पकाने पर लम्बाई में दोगुना बढ़ता है तथा खाने में मुलायम और स्वाद में अच्छा है। यह किस्म पकने में मध्यम अगेती (125 दिन) होने की वजह से बहुफसलीय चक्र जैसे कि धान–सब्जी (पालक, मूली, आलू)–गेहूं–मूंग के लिए उपयुक्त है।
पूसा सुगंध–2	2001	पंजाब, हरियाणा, दिल्ली, पश्चिमी उत्तर प्रदेश और उत्तराखंड/सिंचित अवस्था में खेती के लिए	55	यह धान की अर्ध बौनी, अधिक उपज देने वाली, बासमती गुणों से परिपूर्ण किस्म है। इसका

				दाना लम्बा, बारीक और सुगंधित है जो पकाने पर लम्बाई में दोगुना बढ़ता है तथा खाने में मुलायम और स्वाद में अच्छा है। यह किस्म पकने में मध्यम अगेती (120 दिन) होने की वजह से बहुफसलीय चक्र के लिए उपयुक्त है।
संकर धान पूसा आर.एच.–10	2001	पंजाब, हरियाणा, दिल्ली, पश्चिमी उत्तर प्रदेश और उत्तराखंड/ सिंचित अवस्था में रोपाई के लिए	65	यह बासमती गुणों वाली धान की विश्व में प्रथम संकर किस्म है। इसका दाना अत्यधिक सुगंधित, लम्बा, पतला है जो पकाने पर लम्बाई में दोगुना बढ़ जाता है और अधिक स्वादिष्ट होता है। यह एक मध्यम बौनी, जल्दी पकने वाली (110–115 दिन) किस्म है, जिससे सिंचाई (पानी) की बचत होती है। इस किस्म की प्रतिदिन उपज बहुत अधिक है तथा अधिक मुनाफा देती है। यह किस्म उत्तरी भारत में गेहूं–धान फसल प्रणाली के लिए उपयुक्त है।
पूसा बासमती–1	1989	उत्तर–पश्चिमी भारत के बासमती उगाने वाले क्षेत्र/सिंचित अवस्था में रोपाई के लिए	45	यह बासमती धान की एक मध्यम बौनी किस्म है। इसका दाना अत्यधिक लम्बा तथा पकाने पर मुलायम व सुगंधित होता है। हमारे देश के बासमती चावल के निर्यात में लगभग 30 प्रतिशत योगदान इसी किस्म का है। यह किस्म उत्तरी भारत में गेहूं–धान फसल प्रणाली के लिए उपयुक्त है।

(ख) सिंचित क्षेत्र के लिए असुंगधित किस्में

पूसा–44	1994	कर्नाटक, केरल, पंजाब, हरियाणा तथा उत्तर प्रदेश/सिंचित अवस्था में खेती के लिए	40–45	यह बौनी किस्म 140–145 दिनों में पकाकर तैयार हो जाती है। इसके दाने लम्बे, इकहरे तथा पारभासी होते हैं, जिनका छिलका आसानी से उतर जाता है तथा मिलीकरण के दौरान

				दाना कम टूटता है। यह किस्म मशीनों द्वारा कटाई के लिए अति उपयुक्त है।
पी.एन.आर.–546	2006	हरियाणा, उत्तर प्रदेश, बिहार एवं पश्चिम बंगाल / सिंचित क्षेत्रों के लिए	50–55	यह धान की अच्छे दाने वाली किस्म है जो 110 दिनों में पककर तैयार हो जाती है।

(ग) वर्षा पोषित क्षेत्र एवं उपराऊँ अवस्था के लिए धान की किस्में

पूसा–834	1995	आन्ध्र प्रदेश, कर्नाटक एवं उत्तर प्रदेश / उपराऊँ अवस्था के लिए	40–45	यह बौनी किस्म मध्यम से ऊँचाई वाली जमीन में सीधी बुवाई तथा रोपण पद्धति में भी अच्छी उपज देती है। पौध की ऊंचाई 90 सें. मी., दाने मध्यम, लम्बे तथा खाने में स्वादिष्ट तथा मुलायम होते हैं। फसल 120–125 दिन में पककर तैयार हो जाती है।
पी.एन.आर.–381	1992	उत्तर प्रदेश, पश्चिम बंगाल तथा महाराष्ट्र / उपराऊं अवस्था के लिए	40–45	धान की यह मध्यम बौनी किस्म (90 सें.मी.) है। इसके दाने मध्यम लम्बे तथा स्वादिष्ट हैं। फसल 120 दिन में पककर तैयार हो जाती है।
जल्दी धान–13	2006	उपराऊं अवस्था – उड़ीसा, बिहार, झारखण्ड एवं पश्चिम बंगाल सिंचित, पश्चिम बंगाल, बिहार / सूखा प्रभावित क्षेत्रों के लिए	उपराऊं अवस्था–30 30 क्विं / है. सिंचित–40 क्विं / है.	यह मोटे दाने की जल्दी पकने वाली किस्म है जो 90–95 दिनों में पक कर तैयार हो जाती है।

खेत की तैयारी एवं बुवाई

धान की खेती मुख्य रूप से निचली भूमियों में की जाती है। साथ ही धान को ऊंची भूमियों एवं गहरे पानी में भी उगाया जाता है। धान उगाने की विभिन्न विधियों में से उत्तरी भारत के लिए धान सघनता पद्धति, एरोबिक धान पद्धति एवं रोपाई विधि अधिक महत्वपूर्ण है। अतः उपरोक्त तीनों विधियों का उल्लेख विस्तार से किया जा रहा है।

धान सघनता विधि (एस.आर.आई. पद्धति)

इस पद्धति को सिस्टम ऑफ राइस इन्टेंसिफिकेशन अथवा एसआरआई अथवा धान सघनता पद्धति के नाम से जाना जाता है। इस पद्धति से धान उगाने के लिए पौध की रोपाई योग्य उम्र 8–10 दिन अथवा अधिकतम 14 दिन संस्तुत की गई है। इस अवस्था की पौध को उखाड़ने एवं खेत में

लगाने के बीच कम से कम समय होना चाहिए। खेत की तैयारी परंपरागत तरीके से की जाती है। खेत में पानी खड़ा करके मिट्टी पलटने वाले हल अथवा पडलर से 2–3 बार जुताई करके पाटा लगा देते हैं। पौध की रोपाई 25 सें.मी. × 25 सें.मी. अंतरण पर की जाती है और एक स्थान पर एक ही पौधा रोपा जाता है। इस विधि की मुख्य विशेषता यह है कि खेत में खड़ा हुआ पानी (जलाक्रांत) नहीं रखना है। खेत को हमेशा नमीयुक्त रखना आवश्यक है। बार–बार कुछ अंतराल पर हल्की सिंचाई करना एवं खेत को पानी रहित रखना पड़ता है ताकि मिट्टी में पर्याप्त वायु संचार हो सके। खरपतवार समस्या से निजात पाने के लिए हस्तचालित अथवा शक्तिचालित 'रोटेटिंग हो' का प्रयोग संस्तुत किया गया है। इस विधि से खरपतवार नियंत्रण के साथ–साथ मिट्टी में वायु संचार भी बढ़ता है जिससे कि जड़ों का विकास अच्छा होता है। साथ ही खरपतवार मिट्टी में मिल जाने के बाद उसमे जैव–पदार्थ की मात्रा बढ़ाते हैं जो कि लाभदायक जीवों की संख्या में वृद्धि करता है।

धान सघनता पद्धति में पोषक तत्वों की पूर्ति जैविक स्रोतों जैसे कम्पोस्ट, गोबर की खाद एवं हरी खाद आदि से की जानी चाहिए। यदि जैविक स्रोत पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध न हों तो आवश्यक पोषक तत्वों की आपूर्ति उर्वरकों एवं जैविक स्रोतों दोनों के एकीकृत प्रयोग द्वारा की जा सकती है। इस विधि से धान उगाने के अनेक लाभ संज्ञान में आए हैं। उदाहरणार्थ परंपरागत तरीके से धान उगाने की तुलना में धान सघनता पद्धति से उगाने पर 1.5–3.0 गुनी तक अधिक पैदावार दर्ज की गई है। साथ ही परंपरागत धान पद्धति से धान उगाने की तुलना में धान सघनता पद्धति में 30–40 प्रतिशत कम पानी की आवश्यकता होती है।

एरोबिक (वायवीय) धान

यह कम पानी उपलब्ध होने की परिस्थिति में धान उगाने की एक आधुनिक विधि है। अनुसंधान परीक्षणों से ज्ञात हुआ है कि एरोबिक धान की जल–उत्पादकता प्रचलित विधि से धान उगाने की तुलना में अधिक होती है। एरोबिक (वायवीय) विधि से धान उगाने के लिए अधिक उपज देने वाली प्रजातियों/संकरों की लेह रहित (अन–पडल्ड) दशा में सीड ड्रिल अथवा देसी हल से सीधे खेत में बुवाई करते हैं और गेहूं की भांति धान को उगाया जाता है। साथ ही आवश्यकतानुसार फसल में सिंचाई भी करते रहते हैं। धान की कुछ प्रजातियां/संकर जैसे अंजलि, प्रो एग्रो 6111, पी आर–1160, पी आर एच–10, पूसा 834, सुगंध–5 आदि को एरोबिक पद्धति से सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है। पंक्तियों में देसी हल अथवा सीड ड्रिल से बुवाई करने पर 30–40 कि.ग्रा./हेक्टेयर बीज की आवश्यकता होती है। पंक्ति से पंक्ति की दूरी 25 सें.मी. अधिक उपयुक्त पाई गई है। यदि खेत में नमी पर्याप्त न हो तो फसल को पलेवा करने के बाद बोया जाए अथवा बुवाई के तुरंत बाद एक हल्का पानी लगाना चाहिए। उत्तरी भारत में इसकी बुवाई का उपयुक्त समय जून का महीना है। एरोबिक धान के लिए 150 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 60 कि.ग्रा. फॉस्फोरस एवं 40 कि.ग्रा. पोटाश प्रति हेक्टेयर की संस्तुति की गई है। एक–तिहाई नाइट्रोजन एवं फॉस्फोरस व पोटाश की संपूर्ण मात्रा बुवाई के समय कूड़ों में डालना अति लाभकारी है। नाइट्रोजन की शेष दो–तिहाई मात्रा को दो बराबर भागों में बांटकर कल्ले बनते समय और पुष्पावस्था पर देना चाहिए। नीम–लेपित यूरिया का प्रयोग करके धान में नाइट्रोजन की उपयोग क्षमता में वृद्धि की जा सकती है। फसल में बाली निकलने से लेकर पकने की अवस्था

तक खेत में पर्याप्त नमी का होना आवश्यक होता है। शोध परिणामों से ज्ञात हुआ है कि प्रचलित धान उगाने की विधि की तुलना में एरोबिक धान में 40–45 प्रतिशत पानी की बचत होती है।

एरोबिक धान में प्रायः लौह तत्व की उपलब्धता की समस्या आ सकती है। लौह तत्व की कमी के लक्षण पौधों पर इस प्रकार हैं – पत्तियों की शिराओं के बीच पीलापन आना, धीरे–धीरे संपूर्ण पत्तियों का पीला हो जाना और अंततः पौधों के शेष भागों का पीला हो जाना आदि। जिन मृदाओं में लौह तत्व की कमी हो और फसल पर लौह तत्व की कमी प्रतीत हो तब 0.5 प्रतिशत फेरस सल्फेट या फेरस चिलेट्स का घोल कल्ले फूटने के उपरांत 15 दिन के अंतराल पर 2–3 बार छिड़क देना चाहिए। एरोबिक धान में खरपतवारों की बढ़वार भी प्रायः एक गंभीर समस्या होती है। बुवाई के 2–3 दिन के अंदर पेंडिमिथालिन 1 कि.ग्रा./हेक्टेयर की दर से छिड़कने पर खरपतवारों की समस्या को कम किया जा सकता है। बुवाई के 20 दिन बाद 2, 4–डी. 0.5 कि.ग्रा. सक्रिय तत्व/हेक्टेयर का छिड़काव चौड़ी पत्ती वाले खरपतवारों की रोकथाम के लिए किया जा सकता है। एरोबिक धान में सूत्रकृमियों (निमैटोड्स) द्वारा हानि की भी प्रबल संभावना बनी रहती है। इनके नियंत्रण के लिए कार्बोफ्युरॉन 3 प्रतिशत जी की 25–30 कि.ग्रा./है. मात्रा का प्रयोग करें। कार्बोफ्युरॉन को अंकुरण के 20–30 दिन बाद डालें, परन्तु डालते समय यह सुनिश्चित कर लें कि खेत में पर्याप्त नमी होनी चाहिए।

रोपाई विधि बीज की मात्रा एवं उपचार

बुवाई से पहले स्वस्थ बीजों की छंटनी कर लेनी चाहिए। इसके लिए 10 प्रतिशत नमक के घोल का प्रयोग करते हैं। नमक का घोल बनाने के लिए 2.0 कि.ग्रा. सामान्य नमक 20 लीटर पानी में घोल लें और इस घोल में 30 कि.ग्रा. बीज डालकर अच्छी तरह हिलाएं, इससे स्वस्थ एवं भारी बीज नीचे बैठ जाएंगे और थोथे एवं हल्के बीज ऊपर तैरने लगेंगे। इस तरह साफ व स्वस्थ छांटा हुआ 20 कि.ग्रा. बीज महीन दाने वाली किस्मों में तथा 25 कि.ग्रा. बीज मोटे दानों की किस्मों में एक हेक्टेयर की रोपाई के लिए पौध तैयार करने के लिए पर्याप्त होता है। बीज उपचार के लिए 10 ग्राम बॉविस्टीन और 2.5 ग्राम पोसामाइसिन या 1 ग्राम स्ट्रेप्टोसाईक्लीन या 2.5 ग्राम एग्रीमाइसीन 10 लीटर पानी में घोल लें। अब 20 कि.ग्रा. छांटे हुए बीज को 25 लीटर उपरोक्त घोल में 24 घंटे के लिए रखें। इस उपचार से जड़ गलन (फूट राट), झोंका (ब्लास्ट) एवं पत्ती झुलसा रोग (बैक्टीरियल लीफ ब्लाइट) आदि बीमारियों के नियन्त्रण में सहायता मिलती है।

धान की नर्सरी की तैयारी एवं प्रबंधन

नर्सरी ऐसी भूमि में तैयार करनी चाहिए जो उपजाऊ, अच्छे जल निकास वाली व जल स्रोत के पास हो। एक हेक्टेयर क्षेत्रफल में धान की रोपाई के लिए 1/10 हेक्टेयर (1000 वर्ग मीटर) क्षेत्रफल में पौध तैयार करना पर्याप्त होता है। धान की नर्सरी की बुवाई का सही समय वैसे तो विभिन्न किस्मों पर निर्भर करता है। लेकिन 15 मई से लेकर 20 जून तक का समय बुवाई के लिए उपयुक्त पाया गया है। धान की नर्सरी भीगी विधि से पौध तैयार करने का तरीका उत्तरी भारत में अधिक प्रचलित है। इसके लिए खेत में पानी भरकर 2–3 बार जुताई करते हैं ताकि मिट्टी लेहयुक्त हो जाए तथा खरपतवार नष्ट हो जाएं। आखिरी जुताई के बाद पाटा लगाकर खेत को समतल कर लें। जब मिट्टी

की सतह पर पानी न रहे तो खेत को 1.25 से 1.50 मीटर चौड़ी तथा सुविधाजनक लम्बी क्यारियों में बांट लें ताकि बुवाई, निराई एवं सिंचाई की विभिन्न सस्य क्रियाएं आसानी से की जा सकें। क्यारियां बनाने के बाद पौधशाला में 5 सें.मी. ऊंचाई तक पानी भर दें और अंकुरित बीजों को समान रूप से क्यारियों में बिखेर दें। पौधशाला के 1000 वर्ग मीटर क्षेत्रफल में लगभग 600–800 कि.ग्रा. गोबर की गली – सड़ी खाद, 8–12 कि.ग्रा. यूरिया, 15–20 कि.ग्रा. सिंगल सुपर फास्फेट, 5–6 कि.ग्रा. म्युरेट ऑफ पोटाश एवं 2–2.5 कि.ग्रा. जिंक सल्फेट खेत की तैयारी के समय अच्छी तरह से मिलाना चाहिए। जिन क्षेत्रों में लौह तत्व की कमी के कारण हरिमाहीनता (क्लोरोसिस) के लक्षण दिखाई दें, उन क्षेत्रों में 2–3 बार एक सप्ताह के अन्तराल पर 0.5 प्रतिशत फैरस सल्फेट के घोल का छिड़काव करने से हरिमाहीनता की समस्या को रोका जा सकता है।

पौधशाला में 10–12 दिन बाद निराई अवश्य करें। यदि पौधशाला में अधिक खरपतवार होने की संभावना हो तो ब्युटाक्लोर 50 ई सी या बैन्थियोकार्ब नामक शाकनाशियों की 120 मि.ली. मात्रा 60 लीटर पानी में घोलकर 1000 वर्ग मीटर क्षेत्रफल में बुवाई के 4–5 दिन बाद खरपतवार उगने से पहले छिड़क दें। पौधशाला में कीटों का प्रकोप होते ही थाइमेथोएट 30 ई सी 2 मि.ली. दवा प्रति लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़कना चाहिए। सामान्यतः जब पौध 21–25 दिन पुरानी हो जाए तथा उसमें 5–6 पत्तियां निकल जाएं तो यह रोपाई के लिए उपयुक्त होती है। पौध उखाड़ने के एक दिन पहले नर्सरी में अच्छी तरह से पानी भर देना चाहिए, जिससे पौध को आसानी से उखाड़ा जा सके तथा साथ ही साथ पौध की जड़ों को भी कम नुकसान हो।

पौध की रोपाई

रोपाई के लिए पौध उखाड़ने से एक दिन पहले नर्सरी में पानी लगा दें और पौध उखाड़ते समय सावधानी रखें। पौधों की जड़ों को धोते समय नुकसान न होने दें तथा पौधों को काफी नीचे से पकड़ें। पौध की रोपाई पंक्तियों में करें। पंक्ति से पंक्ति की दूरी 20 सें.मी. तथा पौधे से पौधे की दूरी 10 सें.मी. रखनी चाहिए। एक स्थान पर 2 से 3 पौध ही लगाएं। इस प्रकार एक वर्ग मीटर में लगभग 50 पौधे होने चाहिए।

पोषक तत्व प्रबंधन

अधिक उपज एवं भूमि की उर्वरता शक्ति बनाये रखने के लिए हरी खाद या गोबर या कम्पोस्ट का प्रयोग करना चाहिए। हरी खाद हेतु सनई या ढ़ैंचे का प्रयोग किया गया हो तो नाइट्रोजन की मात्रा कम की जा सकती है, क्योंकि सनई या ढ़ैंचे से लगभग 50–60 कि.ग्रा. नाइट्रोजन प्रति हेक्टेयर प्राप्त होती है।

उर्वरकों का प्रयोग भूमि परीक्षण के आधार पर करना चाहिए। धान की बौनी किस्मों के लिए 120 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 60 कि.ग्रा. फॉस्फोरस, 40 कि.ग्रा. पोटाश एवं 25 कि.ग्रा. जिंक सल्फेट प्रति हेक्टेयर की दर से देना चाहिए। बासमती किस्मों के लिए 100–120 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 50–60 कि.ग्रा. फॉस्फोरस, 40–50 कि.ग्रा. पोटाश एवं 20–25 कि.ग्रा. जिंक सल्फेट प्रति हेक्टेयर देना चाहिए। जबकि

संकर धान के लिए 130–140 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 60–70 कि.ग्रा. फॉस्फोरस, 50–60 कि.ग्रा. पोटाश एवं 25–30 कि.ग्रा. जिंक सल्फेट प्रति हेक्टेयर देना चाहिए। यूरिया की पहली तिहाई मात्रा का प्रयोग रोपाई के 5–8 दिन बाद करें जब पौधे अच्छी तरह से जड़ पकड़ लें। दूसरी एक तिहाई यूरिया की मात्रा कल्ले फूटते समय (रोपाई के 25–30 दिन बाद) तथा शेष एक तिहाई हिस्सा फूल आने से पहले (रोपाई के 50–60 दिन बाद) खड़ी फसल में छिड़काव करके करें।

फॉस्फोरस की पूरी मात्रा सिंगल सुपर फास्फेट या डाई अमोनियम फास्फेट (डी.ए.पी.) के द्वारा, पोटाश की भी पूरी मात्रा म्युरेट ऑफ पोटाश के माध्यम से एवं जिंक सल्फेट की पूरी मात्रा धान की रोपाई करने से पहले अच्छी प्रकार मिट्टी में मिला देनी चाहिए। यदि किसी कारणवश पौध रोपते समय जिंक सल्फेट खाद न डाला गया हो तो इसका छिड़काव भी किया जा सकता है। इसके लिए 15–20 दिनों के अन्तराल पर 3 छिड़काव 0.5 प्रतिशत जिंक सल्फेट + 0.25 प्रतिशत बुझे हुए चूने के घोल के साथ करने चाहिए। पहला छिड़काव रोपाई के एक महीने बाद करें। नाइट्रोजनधारी उर्वरक (यूरिया) बनाने वाली कंपनियों ने नीम लेपित यूरिया का निर्माण व्यवसायिक स्तर पर प्रारम्भ कर दिया है। आजकल यह उर्वरक बाजार में भी उपलब्ध है और किसानों द्वारा इसकी मांग दिनों दिन बढ़ती जा रही है। इस उर्वरक को बनाने के लिए नीम के तेल का इस्तेमाल किया जा रहा है।

जल प्रबंधन

धान की फसल के लिए सिंचाई की पर्याप्त सुविधा होना बहुत ही जरूरी है। सिंचाई की पर्याप्त सुविधा होने पर लगभग 5–6 सें.मी. पानी खेत में खड़ा रहना अति लाभकारी होता है। धान की 4 अवस्थाओं – रोपाई, ब्यांत, बाली निकलते समय तथा दाने भरते समय खेत में सर्वाधिक पानी की आवश्यकता पड़ती है। इन अवस्थाओं पर खेत में 5–6 सें.मी. पानी अवश्य भरा रहना चाहिए। कटाई से 15 दिन पहले खेत से पानी निकाल कर सिंचाई बंद कर देनी चाहिए।

सारणी 2 : धान में खरपतवार नियंत्रण के लिए कुछ शाकनाशियों का ब्यौरा

खरपतवारनाशी रसायन	मात्रा (कि.ग्रा.) सक्रिय पदार्थ/है.	प्रयोग का समय
ब्युटाक्लोर	1.5–2.0	बुवाई/रोपाई के 3–4 दिन बाद
एनिलोफास	0.4–0.50	बुवाई/रोपाई के 3–4 दिन बाद
बैंथियोकार्ब	1.0–1.50	बुवाई/रोपाई के 3–4 दिन बाद
पेंडीमेथालिन	1.0–1.50	बुवाई/रोपाई के 3–4 दिन बाद
आक्साडायजान	0.75–1.0	बुवाई/रोपाई के 3–4 दिन बाद
आक्सीफ्लोरफेन	0.15–0.25	बुवाई/रोपाई के 3–4 दिन बाद
प्रेटिलाक्लोर	0.50–1.0	बुवाई/रोपाई के 3–4 दिन बाद
2,4–डी	0.5–1.0	बुवाई/रोपाई के 25–30 दिन बाद
फेनाक्जाफ्राप	0.06–0.07	बुवाई के 20–25 दिन बाद
बिस्पाइरिबैक	0.02–0.03	बुवाई के 15–25 दिन बाद

खरपतवार प्रबंधन

धान के खरतपवार नष्ट करने के लिए खुरपी या पेडीवीडर का प्रयोग किया जा सकता है। रासायनिक खरपतवार नियंत्रण के लिए खरपतवारनाशी दवाओं का प्रयोग करना चाहिए। धान के खेत में खरपतवार नियंत्रण के लिए कुछ शाकनाशियों का उल्लेख सारणी–2 में किया गया है।

खरपतवारनाशी रसायनों की आवश्यक मात्रा को 600 लीटर पानी में घोल बनाकर प्रति हेक्टेयर की दर से समान रूप से छिड़काव करना चाहिए।

समेकित कीट प्रबंधन

1) पौध फुदके

पौध फुदके भूरे, काले एवं सफेद रंग के छोटे–छोटे कीट होते हैं जिनके शिशु व वयस्क दोनों ही पौधों के तने व पर्णाच्छद से रस चूसकर फसल को हानि पहुंचाते हैं। फसल पर इस कीट की निगरानी बहुत जरूरी है क्योंकि फुदके तने पर होते हैं तथा पत्तों पर नहीं दिखते। इनकी निगरानी के लिए प्रकाश–प्रपंच (लाइट ट्रैप) का प्रयोग भी किया जा सकता है। आवश्यकतानुसार इमिडाक्लोप्रिड 17.8 एसएल 1 मि.ली./3 लीटर पानी या थायोमेथोक्ज़म 25 डब्ल्यू पी 1 ग्राम/5 लीटर या बीपीएमसी 50 ईसी 1 मि.ली./ली. या कार्बेरिल 50 डब्ल्यू पी 2 ग्राम/लीटर या बुप्रोफ़ेज़िन 25 एस सी 1 मि.ली./ली. पानी का छिड़काव करें। छिड़काव करते समय नोज़ल पौधों के तनों पर रखें। दानेदार कीटनाशी जैसे कार्बोफ्युरान 3 जी 25 कि.ग्रा./है. या फिप्रोनिल 0.3 जी 25 कि.ग्रा./हेक्टेयर भी इस्तेमाल कर सकते हैं।

2) तना छेदक

तना छेदक की केवल सूंडियां ही फसल को हानि पहुंचाती हैं तथा वयस्क पतंगे फूलों के शहद आदि पर निर्वाह करते हैं। बाली आने से पहले इनके हानि के लक्षणों को 'डेड–हार्ट' तथा बाली आने के बाद 'सफेद बाली' के नाम से जाना जाता है। प्रकाश प्रपंच के उपयोग से तना छेदक की संख्या पर निगरानी रखें। निगरानी के लिए फेरोमोन प्रपंच 5 प्रति हेक्टेयर पीला तना छेदक के लिए लगाएं। रोपाई के 30 दिन बाद *ट्राइकोग्रामा जैपोनिकम* (ट्राइकोकार्ड) 1–1.5 लाख प्रति हेक्टेयर प्रति सप्ताह की दर से 2–6 सप्ताह तक छोड़ें। आवश्यकतानुसार दानेदार कीटनाशी जैसे कार्बोफ्युरॉन 3 जी या कारटैप हाइड्रोक्लोराइड 4 जी या फिप्रोनिल 0.3 जी 25 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर प्रयोग करें अन्यथा क्लोरोपायरीफॉस 20 ईसी 2 मि.ली./लीटर या क्विनलफॉस 25 ईसी 2 मि.ली./लीटर या कारटैप हाइड्रोक्लोराइड 50 एसपी 1 मि.ली./लीटर का छिड़काव करें।

3) पत्ता लपेटक

इस कीट की भी केवल सूंडियां ही फसल को हानि पहुंचाती हैं जबकि वयस्क पतंगे फूलों के शहद पर जिंदा रहते हैं। सूंडी पत्तों के दोनों किनारों को सिलकर इनके हरे पदार्थ को खा जाती है। अधिक प्रकोप की अवस्था में फसल झुलसी नजर आती है। प्रकाश–प्रपंच के प्रयोग से कीट की

निगरानी करें। *ट्राइकोग्रामा काइलोनिस* (ट्राइकोकार्ड) 1–1.5 लाख प्रति हेक्टेयर प्रति सप्ताह की दर से 30 दिन रोपाई उपरांत 3–4 सप्ताह तक छोड़ें। आवश्यकतानुसार क्विनलफॉस 25 ई सी 2.5 मि.ली./लीटर या क्लोरोपायरीफॉस 20 ई सी 2.5 मि.ली./लीटर या कारटैप हाइड्रोक्लोराइड 50 एसपी 1 मि.ली./लीटर या फ्लूबैंडिमाइड 39.35 एससी 1 मि.ली./5 लीटर पानी का छिड़काव करें अन्यथा दानेदार कीटनाशी कारटैप हाइड्रोक्लोराइड 4 जी 25 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर का प्रयोग भी कर सकते हैं।

4) हिस्पा भृंग

नीले–काले रंग के वयस्क भृंग पत्तों के हरे पदार्थ को खाकर सीढ़ीनुमा सफेद लकीरें बनाते हैं जबकि सूंडियां पत्तों के अंदर भूरे रंग की सुरंगें बना देती हैं। आवश्यकतानुसार क्लोरोपाइरीफॉस 20 ई सी 2.5 मि.ली./लीटर पानी या क्विनलफॉस 25 ईसी 3 मि.ली./लीटर का छिड़काव करें या कार्बारिल धूल 25–30 कि.ग्रा./है. की दर से बुरकाव करें।

5) गंधी बग

यह कीट खेत में दुर्गन्ध फैलाता है, अतः इसे गंधी बग कहा जाता है। इसके शिशु व वयस्क दोनों ही दूधिया अवस्था में दानों से रस चूसकर इन्हें खाली कर देते हैं। ऐसे दानों पर काला निशान भी बन जाता है। आवश्यकतानुसार क्विनलफॉस 25 ई सी 3 मि.ली./लीटर पानी का छिड़काव करें अन्यथा कार्बारिल या मिथाइल पैराथियान धूल 25–30 कि.ग्रा./हेक्टेयर बुरकाव करें।

6) सैनिक कीट (झुंड में पाई जाने वाली सूंडी)

इस कीट की केवल सूंडियां ही फसल को नुकसान करती हैं जबकि पतंगे फूलों से रस चूसते हैं। सूंडियां नर्सरी में पौध को इस तरह कुतर कर खा जाती हैं जैसे इन्हें जानवरों ने चर लिया हो। खेत में यह कीट पत्तों की मध्य शिराओं को छोड़ते हुए पूरे पत्तों को चट कर जाता है। प्रकाश–प्रपंच का प्रयोग कर कीटों को एकत्र कर नष्ट कर दें। आवश्यकतानुसार क्लोरोपायरीफॉस 20 ई सी 2.5 मि.ली./लीटर या क्विनलफॉस 25 ई सी 3 मि.ली./लीटर पानी का छिड़काव करें अन्यथा कार्बारिल या मैलाथियान धूल 25–30 कि.ग्रा./हेक्टेयर बुरकाव करें।

7) ग्रास हॉपर

इस कीट के फुदकने वाले शिशु व वयस्क पत्तों को इस तरह खाते हैं जैसे कि पशु चर गए हों। गर्मी में धान के खेतों की मेड़ों की खुरचाई करें ताकि इस कीट के अंडे नष्ट हो जाए। इस कीट की साल में एक ही पीढ़ी होती है तथा अंडे नष्ट कर देने से इसका प्रकोप काफी कम हो जाता है। आवश्यकतानुसार क्लोरोपायरीफॉस 20 ई सी 2.5 मि.ली./लीटर या क्विनलफॉस 25 ई सी 3 मि.ली./लीटर का छिड़काव करें अन्यथा कार्बारिल या मिथाइल पैराथियान धूल 25–30 कि.ग्रा./है. का बुरकाव करें।

विभिन्न कीटों के प्रबंधन पर नजर डालें तो यह निष्कर्ष निकलता है कि यदि किसान निम्नलिखित बातों का ध्यान रखें तो कीड़ों के प्रकोप को कम करने में काफी मदद मिलेगी–

(i) गर्मियों में खेत की गहरी जुताई करें तथा मेड़ों की खुरचाई करके घास खड़ी न रहने दें।

(ii) रोपाई से पहले पौधों के शीर्ष को काटकर नष्ट कर दें।

(iii) नाइट्रोजन उर्वरकों के अत्यधिक प्रयोग से बचते हुए खाद का संतुलित प्रयोग करें।

(iv) खरपतवारों को नियंत्रित करते रहें।

(v) खेतों को लगातार पानी से भरकर न रखें तथा पानी सूखने के बाद ही दोबारा सिंचाई करें।

(vi) प्रकाश प्रपंच का उपयोग कर कीटों की निगरानी करें।

(vii) फसल पर कीटों की निगरानी करते रहें तथा आर्थिक दहलीज स्तर पर ही कीटनाशियों का प्रयोग सही मात्रा में ही करें। अधिक मात्रा में प्रयोग करने से कुछ लाभ नहीं मिलता।

(viii) कीटों के प्राकृतिक शत्रुओं जैसे मकड़ियों का संरक्षण करें। जहां इनकी संख्या ज्यादा हो वहां कीटनाशी न छिड़कें। दानेदार कीटनाशी लाभकारी कीटों को अपेक्षाकृत कम नुकसान पहुंचाते हैं।

रोग प्रबंधन

1. ब्लास्ट, बदरा या झोंका रोग

यह रोग फफूंद से फैलता है। पौधों के सभी भाग इस बीमारी द्वारा प्रभावित होते हैं। वृद्धि अवस्था में यह रोग पत्तियों पर भूरे धब्बे के रूप में दिखाई देता है। इनके धब्बों के किनारे कत्थई रंग के तथा बीच वाला भाग राख के रंग का होता है। रोग के तेजी से आक्रमण होने पर बाली का आधार भी ग्रसित हो जाता है। इस अवस्था को ग्रीवा गलन कहते हैं, जिसमें बाली आधार से मुड़कर लटक जाती हैं। फलतः दाने का भराव भी पूरा नहीं हो पाता है।

प्रबंधन

1. ट्राइसायक्लेजोल (बीम 75 डब्ल्यू पी 2 ग्रा. रसायन/कि.ग्रा. बीज) उपचारित बीज बोएं।
2. जुलाई के प्रथम पखवाड़े में रोपाई पूरी कर लें। देर से रोपाई करने पर झोंका रोग के लगने की संभावना बढ़ जाती है।
3. यदि पत्तियों पर भूरे रंग के धब्बे दिखाई देने लगें तो कार्बेन्डाजिम 1000 या ट्राइसायक्लेजोल 500 ग्रा. का 500 लीटर पानी में घोल बनाकर एक हेक्टेयर में छिड़काव करें।

2. पत्ती का जीवाणु झुलसा रोग

यह बीमारी जीवाणु के द्वारा होती है। पौधों की छोटी अवस्था से लेकर परिपक्व अवस्था तक यह बीमारी कभी भी हो सकती है। इस रोग में पत्तियों के किनारे ऊपरी भाग से शुरू होकर मध्य भाग तक सूखने लगते हैं। सूखे पीले पत्तों के साथ–साथ राख के रंग के चकत्ते भी दिखाई देते हैं। संक्रमण की उग्र अवस्था में पूरी पत्ती सूख जाती है। अंततः बालियां दानों रहित रह जाती है।

प्रबंधन

1. उपचारित बीज का प्रयोग करें। इसके लिए स्ट्रेप्टोसाइक्लिन (2.5 ग्रा.) + कॉपर ऑक्सीक्लोराइड (25 ग्राम) प्रति 10 लीटर पानी के घोल में बीज को 12 घंटे तक डुबोएं।
2. इस बीमारी के लगने की अवस्था में नाइट्रोजन का प्रयोग कम कर दें।
3. जिस खेत में बीमारी लगी हो उसका पानी दूसरे खेत में न जाने दें। इससे बीमारी के फैलने की आशंका होती है। साथ ही उस खेत को भी पानी न दें।
4. खेत में बीमारी को फैलने से रोकने के लिए खेत से समुचित जल निकास की व्यवस्था की जाए तो बीमारी को काफी हद तक नियंत्रित किया जा सकता है।
5. बीमारी के नियंत्रण के लिए 74 ग्राम एग्रीमाइसीन–100 और 500 ग्राम कॉपर ऑक्सीक्लोराइड (फाइटोलान/ब्लाइटाक्स–50/क्यूप्राविट) को 500 लीटर पानी में घोल बनाकर प्रति हेक्टेयर की दर से तीन–चार बार छिड़काव करें। पहला छिड़काव रोग प्रकट होने पर तथा आवश्यकतानुसार 10 दिन के अन्तराल पर करें।

3. गुतान झुलसा (शीथ ब्लाइट)

यह बीमारी फफूंद के द्वारा होती है। इसके प्रकोप से पत्ती के शीथ (गुतान) पर 2–3 सें.मी. लम्बे हरे से भूरे रंग के धब्बे बनते हैं जो कि बाद में चलकर भूसे के रंग के हो जाते हैं। धब्बों के चारों तरफ बैंगनी रंग की पतली धारी बन जाती है।

प्रबंधन

कार्बेन्डाजिम 500 ग्राम या शीथमार–3 (1.5 लीटर) या हेक्साकोनाजोल (कॉन्टाफ) 1000 मि.ली. दवा 500 लीटर पानी में घोलकर प्रति हेक्टेयर की दर से छिड़काव करें।

4. खैरा रोग

यह बीमारी जस्ते की कमी के कारण होती है। इसके लगने पर निचली पत्तियां पीली पड़नी शुरू हो जाती हैं और बाद में पत्तियों पर कत्थई रंग के छिटकवां धब्बे उभरने लगते हैं। रोग की तीव्र अवस्था में रोग ग्रसित पत्तियां सूखने लगती हैं। कल्ले कम निकलते हैं और पौधों की वृद्धि रुक जाती है।

प्रबंधन

1. यह बीमारी न लगे इसके लिए 25 कि.ग्रा. जिंक सल्फेट प्रति हेक्टेयर की दर से रोपाई से पहले खेत की तैयारी के समय डालना चाहिए।
2. बीमारी लगने के बाद इसकी रोकथाम के लिए 5 कि.ग्रा. जिंक सल्फेट तथा 2.5 कि.ग्रा. चूना 600–700 लीटर पानी में घोलकर एक हेक्टेयर में छिड़काव करें। अगर रोकथाम न हो तो 10 दिन बाद पुनः छिड़काव करें।

कटाई एवं मड़ाई

बालियां निकलने के लगभग एक माह बाद सभी किस्में पक जाती हैं। कटाई के लिए जब 80 प्रतिशत बालियों में 80 प्रतिशत दाने पक जाएं और उनमें नमी 20 प्रतिशत हो, वह समय उपयुक्त होता है। कटाई दरांती से जमीन की सतह पर व ऊसर भूमियों में भूमि की सतह से 15–20 सें.मी. ऊपर से करनी चाहिए। मड़ाई साधारणतया हाथ से पीटकर की जाती है। शक्ति चालित थ्रेसर का उपयोग भी बड़े किसान म ड़ाई के लिए करते हैं। कम्बाईन के द्वारा कटाई एवं मड़ाई का कार्य एक साथ हो जाता है। मड़ाई के बाद दानों की सफाई कर लेते हैं। सफाई के बाद धान के दानों को अच्छी तरह सुखाकर ही भण्डारण करना चाहिए। भण्डारण से पूर्व दानों को 10 प्रतिशत नमी तक सुखा लेते हैं।

उपज

समस्त उपर्युक्त सस्य क्रियाओं व किस्म अपनाने पर शीघ्र पकने वाली किस्मों की प्रति हेक्टेयर औसत उपज 40 से 50 क्विंटल, मध्यम व देर से पकने वाली किस्मों से प्रति हेक्टेयर उपज 50 से 60 क्विंटल एवं संकर धान से प्रति हेक्टेयर औसत उपज 60–70 क्विंटल प्राप्त होती है।

मक्का

जलवायु

वैसे तो मक्का की खेती विभिन्न प्रकार की जलवायु में की जा सकती है परन्तु उष्ण क्षेत्रों में मक्का भी वृद्धि, विकास व उपज अधिक पाई जाती है। यह गर्म ऋतु की फसल है। इसके जमाव के लिए रात व दिन का तापमान ज्यादा होना चाहिए। झंडे निकलने की अवस्था में यदि तापमान अधिक होता है तो फसल काफी प्रभावित होती है। जमाव के लिए 18 से 23^0 से. तापमान तथा वृद्धि व विकास अवस्था में 28^0 से. तापमान उत्तम माना गया है।

मृदा

मक्का की खेती को सभी प्रकार की मृदाओं में उगाया जा सकता है। परंतु मक्का की अच्छी बढ़वार एवं उत्पादकता के लिए बलुई दोमट से लेकर दोमट मिट्टी जिसमें पर्याप्त मात्रा में जीवांश तथा उचित जल निकास का प्रबंध हो, उपयुक्त रहती है। लवणीय एवं क्षारीय भूमियां मक्का की खेती के लिए उपयुक्त नहीं रहती।

फसल चक्र

मक्का की विभिन्न अवधियों में पकने वाली प्रजातियां उपलब्ध हैं जिसके कारण मक्का को विभिन्न फसल क्रमों तथा अर्न्तफसलीकरण खेती के रूप में आसानी से उगाया जा सकता है। मक्का के मुख्य फसल क्रम व अंतः फसल पद्धतियां इस प्रकार हैं–

एक वर्षीय फसल चक्रः मक्का–गेहूं/जौ/आलू/बरसीमय मक्का–आलू–गेहूं (देरी से बोने वाली); मक्का–तोरिया–गेहूं

द्विवर्षीय फसल चक्रः मक्का–तोरिया/आलू/गेहूं – गन्ना; मक्का–आलू–तम्बाकू/ आलू; मक्का–गेहूं – कपास – बरसीम

तीन वर्षीय फसल चक्रः मक्का–आलू–गन्ना–गेहूं; मक्का–गेहूं–ज्वार–गन्ना

अर्न्तफसलीय प्रणालीः मक्का + मूंग; मक्का + सोयाबीनय; मक्का + उड़द; मक्का + कद्दू वर्गीय सब्जी; मक्का + लोबिया

उन्नत किस्में

परिपक्वता अवधि के आधार पर मक्का की अधिक उपज देने वाली बहुत सी संकर किस्में उपलब्ध हैं। उत्तर भारत में उगाई जाने वाली मुख्य किस्में निम्नलिखित हैं–

क) **जल्दी पकने वाली किस्में** : ये किस्में 75–85 दिनों में पककर तैयार हो जाती हैं। इन किस्मों की खेती बाढ़ से प्रभावित या नदियों के कछार क्षेत्रों एवं गन्ना या लम्बी अवधि वाली फसलों में अर्न्तफसलीकरण के रूप में की जा सकती है। इस समूह की मुख्य किस्में हैं – विवेक हाइब्रिड मक्का 4, प्रकाश, विवेक 21, 27 एवं 33, पी ई एच एम 3, पी ई एच एम 5, पी एम एच 2।

ख) **मध्यम परिपक्वता की किस्में** : मध्यम परिपक्वता की किस्में 85–95 दिन में पक जाती है। इन किस्मों को दोनों सिंचित व वर्षा धारित क्षेत्रों में उगाया जा सकता है। के एच 510, बायो 9637, जवाहर मक्का, एम एम एच 69, एच एम 10, एम एच एम 2।

ग) **पूर्णकालिक परिपक्वता की किस्में** : इस वर्ग की किस्में 100–110 दिन में पकती है। इन किस्मों को उन क्षेत्रों में बोना चाहिए जहां पर सिंचाई देकर समय से बुवाई हो सके तथा फसल काल में वर्षा सुनिश्चित हो। के एच 528, सीड टैक 2324, शीतल, बुलंद, पी एच एच 3।

विशिष्ट मक्का की किस्में :

बेबीकॉर्न – वी एल 78, पी ई एच एम 2, पी ई एच एम 5, वी एल बेबी कॉर्न 1।
पॉपकॉर्न – अम्बर पॉप, वी एल अम्बर पॉप, पर्ल पॉप।
स्वीट कॉर्न – माधुरी, प्रिया, विन ओरेंज, एस सी एच 1।
उच्च प्रोटीन मक्का – एच क्यू पी एम 1, 5 एवं 7, शक्तिमान 1, 2, 3 एवं 4, विवेक क्यू पी एम 9।

पूसा संस्थान द्वारा विकसित मक्का की प्रमुख किस्मों का उल्लेख सारणी 1 में किया गया है।

सारणी 1. पूसा संस्थान द्वारा विकसित मक्का की प्रमुख किस्में

किस्म	अनुमोदित वर्ष	अनुमोदित क्षेत्र / परिस्थिति	बीज उपज (क्विं / है.)	विशेषताएं
(क) सामान्य बुवाई के लिए				
संकर ए.एच. 58 (पी.ई.एच.एम. 3)	2001	आन्ध्र प्रदेश, कर्नाटक, महाराष्ट्र, तमिलनाडु एवं राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र, दिल्ली / सामान्य बुवाई के लिए	50	यह संकर किस्म जल्दी पकने वाली (78–83 दिन) है तथा इसका दाना आकर्षक, पीला व मोटा है। यह उच्च तापमान एवं गिरने के प्रति सहिष्णु है।
(ख) सामान्य बुवाई व पानी भराव वाले क्षेत्र के लिए				
संकर ए.एच. 421 (पी.ई.एच.एम. 5)	2004	उत्तरी मैदानी क्षेत्र व प्रायद्वीपीय क्षेत्र / सामान्य बुवाई व पानी भराव वाले क्षेत्रों के लिए	50	यह संकर किस्म जल्दी पकने वाली (80–85 दिन) हैं और वृहत क्षेत्रों में अच्छी उपज देती है तथा जल भराव की अवस्था में भी अच्छा प्रदर्शन करती है एवं नाइट्रोजन की उच्च मात्रा में अधिक उपज देती है।

(ग) सिंचित तथा बारानी अवस्था के लिए

पूसा कम्पोजिट 3 (पी.ई.एच.एम. 5)	2005	राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र, दिल्ली/ सिंचित तथा बारानी अवस्थाओं में बुआई के लिए	44	यह संकुल किस्म मध्यम अवधि में पकने वाली है। इसके तने में चारे के लिए अच्छी गुणवत्ता (पकने तक हरे बने रहना) है तथा इसका भुट्टा लम्बा तथा दाना आकर्षक, पीला व मोटा है। यह प्रमुख पत्तों वाली बीमारियों व तना छेदक के प्रति सहिष्णु है तथा गिरने की प्रतिरोधी है।
पूसा कम्पोजिट 4	2005	राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र, दिल्ली/ सिंचित तथा बारानी अवस्थाओं में बुआई के लिए	44	यह संकुल किस्म मध्यम अवधि में पकने वाली है। इसके तने में चारे के लिए अच्छी गुणवत्ता (पकने तक हरे बने रहना) है तथा इसका भुट्टा लम्बा तथा दाना आकर्षक, पीला व मोटा है। यह प्रमुख पत्तों वाली बीमारियों व तना छेदक के प्रति सहिष्णु है तथा गिरने की प्रतिरोधी है। कम निवेश तथा दवाब की परिस्थितियों में इसका प्रदर्शन अच्छा रहता है।

खेत की तैयारी

वर्षा न होने की दशा में बुवाई से पूर्व एक सिंचाई देकर ही खेत की तैयारी करें। इसके लिए हैरो द्वारा एक गहरी जुताई तथा कल्टीवेटर से दो जुताई पर्याप्त रहती हैं। जुताई के बाद पाटा अवश्य लगाएं जिससे खेत समतल बन जाता है तथा साथ ही ढेले भी टूट जाते हैं। अधिक वर्षा वाले क्षेत्रों में फसल की बुवाई मेड़ों पर करनी चाहिए। इसके लिए अंतिम जुताई के तुरंत बाद निर्धारित दूरी पर मेड़ों बनानी चाहिए तथा मेड़ बनाने के तुरंत बाद बुआई करनी चाहिए क्योंकि देरी से बुवाई करने पर मेड़ों से नमी का ह्रास होता रहता है जो अंकुरण को प्रभावित करता है।

बुवाई

बीज को इमपीडाक्लोर नामक दवाई (2 मि.ली. प्रति कि.ग्रा. बीज की दर) से उपचारित करें जिससे फसल में अंकुरण व शुरू की वृद्धि की अवस्था में कीड़ों का प्रकोप कम रहता है। सिंचित क्षेत्रों में मक्का की बुआई मानसून आने के 10–15 दिन पहले कर देनी चाहिए। वर्षा आधारित क्षेत्रों में सामान्यतः वर्षा के आने पर ही मक्का की बुवाई की जाती है। अधिक वर्षा वाले क्षेत्रों में मेड़ बनाकर उनके ऊपर मक्का की बुआई करनी चाहिए तथा कम वर्षा वाले क्षेत्रों में कूंड में बुवाई करनी चाहिए। मक्का में कतार से कतार

एवं पौधों से पौधों की दूरी 75 सें.मी. × 20 सें.मी. या 60 सें.मी. × 25 सें.मी. रखते हैं। एक हेक्टेयर क्षेत्र की बुवाई के लिए 20–22 कि.ग्रा. बीज पर्याप्त रहता है। यदि मक्का की बुवाई बेबी कॉर्न व पॉप कार्न के लिए की जा रही है तो पौधों के बीच की दूरी 60 सें.मी. × 20 सें.मी. उचित पाई गई है।

पोषक तत्व प्रबंधन

यदि मिट्टी में जीवांश पदार्थ की कमी हो तो बुवाई से लगभग 15–20 दिन पहले 6–8 टन/है. की दर से गोबर की खाद खेत में डालकर मिट्टी में अच्छी प्रकार से मिलाना चाहिए। सामान्यतः पूर्णकालिक किस्मों के लिए 120–150 कि.ग्रा./हेक्टेयर नाइट्रोजन तथा मध्यम व जल्दी पकने वाली किस्मों के लिए क्रमशः 80–100 व 60–80 कि.ग्रा./हेक्टेयर नाइट्रोजन पर्याप्त होती है। जबकि 60 कि.ग्रा. फॉस्फोरस व 40 कि.ग्रा./हेक्टेयर पोटैशियम सभी वर्गों की किस्मों के लिए आवश्यक होती है। यदि मक्का की बुवाई बलुई मिट्टी में की जाती है या खेत में जिंक की कमी हो तो 25 कि.ग्रा./है. की दर से जिंक सल्फेट को खेत में बुवाई से पूर्व डालना चाहिए।

नाइट्रोजन की एक–चौथाई तथा फॉस्फोरस, पोटेशियम व जिंक सल्फेट की पूरी–पूरी मात्रा बुवाई से पहले अंतिम जुताई के समय मिट्टी में मिला दें। नाइट्रोजन की शेष बची मात्रा को दो बराबर भागों में बांटकर घुटने तक ऊंचाई वाली व झंडे निकलने से पहली अवस्था पर खड़ी फसल की पंक्तियों में बिखेर दें। यदि मिट्टी बलुई हो तो नाइट्रोजन को चार बराबर भागों में बांट कर बुवाई, घुटने की ऊंचाई वाली अवस्था, झंडे निकलने से पहले तथा झंडे निकलने वाली अवस्था पर डालना चाहिए।

जल प्रबंधन

स्थायी रूप से अच्छी और भरपूर फसल सुनिश्चित करने के लिए यह आवश्यक है कि वर्षा न होने की स्थिति में सिंचाई की सुविधा होनी चाहिए जिससे किसी भी अवस्था में फसल को पानी की कमी न रहे। झंडे निकलने से भुट्टों में सिल्क निकलने की अवस्था क्रांतिक मानी जाती है। इन अवस्थाओं में खेत में नमी की कमी न हो। सामान्यतः यदि वर्षा की कमी हो तो क्रांतिक अवस्थाओं (घुटने तक की ऊंचाई वाली अवस्था झंडे निकलने वाली अवस्थ, दाना बनने की अवस्था) पर एक या दो सिंचाइयां कर देनी चाहिए जिससे उपज में गिरावट न हो। सिंचाई के साथ–साथ मक्का में जल निकास भी अत्यंत आवश्यक है। यदि मक्का मेड़ों पर बोई गई है तो खेत के अंत में जल निकास का समुचित प्रबंध होना चाहिए। समतल बुवाई की परिस्थिति में भी खेत में जल एकत्र न होने दें।

खरपतवार प्रबंधन

सामान्यतः खरीफ के मौसम में खरपतवारों का प्रकोप ज्यादा होता है जिससे 40–60 प्रतिशत उपज में गिरावट आ सकती है। इसलिए मक्का के खेत को शुरु के 45 दिन तक खरपतवार रहित रखना चाहिए। इसके लिए 2–3 निराई–गुड़ाई पर्याप्त रहती हैं। खरपतवारों के रासायनिक नियंत्रण के लिए एट्राजिन की 1–1.5 कि.ग्रा./हेक्टेयर मात्रा का छिड़काव करके भी नियंत्रित किया जा सकता है। एट्राजिन की आवश्यक मात्रा को 800 लीटर पानी में घोल बनाकर बुवाई के बाद परंतु जमाव से पहले छिड़क देना चाहिए।

झंडे निकालना

बेबी कॉर्न के लिए उगाई गई मक्का में पौधों से झंडे निकलते ही उन्हें तोड़ देना चाहिए तथा उनको हरे चारे के उपयोग में ला सकते हैं।

कीट प्रबंधन

मक्का में वृंत भेदक एक मुख्य कीट है। यह मक्का को शुरू की अवस्था में प्रभावित करता है। यदि पत्तियों पर छोटे छिद्र दिखाई दें तो बिना देरी किए लिण्डेन (20 ई.सी.) का 0.05 प्रतिशत घोल बनाकर 15 दिनों की फसल पर छिड़कना चाहिए। यदि इस कीट का नियंत्रण न हो तो 4 प्रतिशत कार्बोफ्युरान दानों को प्रभावित पौधों में डालना चाहिए। कभी–कभी मक्का की फसल को कुछ कीट जैसे पाइरिला, आर्मीवर्म, कटवर्म आदि नुकसान पहुंचाते हैं। इनकी रोकथाम भी मोनोक्रोटोफास के छिड़काव से की जा सकती है।

रोग प्रबंधन

मक्का में मेडिस, टरसीकम लीफ ब्लाइट, डाउनी मिल्डयू इत्यादि बीमारियां कभी–कभी दिखाई देती हैं। इन बीमारियों का प्रकोप देर से बोई जाने वाली फसल में ज्यादा पाया जाता है। जीवाणु जनित तना विगलन तथा पाइथियम वृंत गलन की बीमारी पौधों में पुष्पन के दौरान जल–भराव की स्थिति में पाई जाती है। इसी प्रकार, फसल की बढ़वार के समय पुष्पनोत्तर अवस्था में कमी के दबाव के कारण पुष्पणोत्तर वृंत गलन के लक्षण भी दिखाई देते हैं। इस प्रकार की बीमारियों को रोकने के लिए रोगरोधी किस्मों की समय से बुवाई करनी चाहिए जबकि मेडिस, टर्सिकम लीफ ब्लाइट की रोकथाम के लिए 2.5 कि.ग्रा./है. जिनेब को 1000 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें। यदि बीमारी की रोकथाम न हो तो 10–15 दिन के अंतराल पर दूसरा छिड़काव करना चाहिए।

कटाई

मक्का की दाने के लिए कटाई तब करें जब भुट्टों के ऊपर की पत्तियां सूखने लगें तथा दाना सख्त हो जाए। इस समय दानों में 25–30 प्रतिशत नमी रहती है। कटाई के बाद भुट्टों को एक सप्ताह के लिए धूप में सुखाएं तथा बाद में कॉर्नशेलर से दानों को भुट्ठों से अलग कर दें। अधिक गुणवत्ता वाली बेबी कॉर्न के लिए इनकी तुड़ाई रेशा (सिल्क) निकलने के 2–3 दिन के अंतराल पर ही करें तथा स्वीट कॉर्न में रेशा निकलने के लगभग 20–22 दिन के बाद वाली अवस्था तुड़ाई के लिए उपयुक्त है क्योंकि इस समय इनमें शुगर की मात्रा सबसे अधिक होती है।

उपज

मक्का की खेती को संस्तुत फसल विधियों को अपना कर करने से 50–60 क्विंटल/है. दाने या 10–15 क्विं./है. बेबी कॉर्न या 80–90 क्विं./है. स्वीट कॉर्न की उपज प्राप्त की जा सकती है। बहुत सी प्रजातियां ऐसी हैं जिनके दाने के लिए कटाई पश्चात पौधे हरे रहते हैं, उन को चारे के लिए उपयोग में लाया जा सकता है। जबकि बेबी कॉर्न व स्वीट कॉर्न की तुड़ाई के पश्चात ही पौधों को हरे चारे के रूप में उपयोग किया जा सकता है।

ज्वार

जलवायु

ज्वार गर्म जलवायु की फसल है। ज्वार की खेती समुद्रतल से लगभग 1500 मीटर तक की ऊंचाई वाले क्षेत्रों में आसानी से की जा सकती है। ज्वार के अंकुरण के लिए न्युनतम तापमान 9–10^0 से. उपयुक्त होता है। पौधों की बढ़वार के लिए सर्वोत्तम औसत तापमान 26–30^0 से. पाया गया है। फसल में भुट्टे निकलते समय 30^0 से. से अधिक तापमान फसल के लिए हानिकारक होता है। ज्वार की फसल कम वर्षा वाले क्षेत्रों में सफलतापूर्वक उगाई जा सकती है क्योंकि इसमें सूखे की दशा को सहन करने की अधिक क्षमता होती है। लगभग 600–1000 मि.मी. वार्षिक वर्षा वाले क्षेत्र ज्वार की खेती के लिए सबसे अनुकूल होते हैं।

मृदा

ज्वार की खेती देश के विभिन्न भागों में भिन्न–भिन्न प्रकार की मृदाओं में की जाती है परन्तु अच्छे जल निकास वाली चिकनी दोमट या दोमट मृदा जिसका पीएच मान 6.0–8.5 के बीच हो इसकी खेती के लिए सर्वोत्तम होती है। मध्य भारत की कपास की काली मृदा ज्वार की खेती के लिए बहुत उपयुक्त समझी जाती हैं। ज्वार की फसल हल्की लवणीय या क्षारीय मृदा में भी आसानी से उगाई जा सकती है।

फसल–चक्र

ज्वार की फसल को दलहनी, तिलहनी तथा अन्य फसलों के साथ अन्तः/मिश्रित फसल पद्धति के रूप में उगाया जाता है। कुछ प्रमुख अन्तर/मिश्रित फसल पद्धतियां निम्नलिखित हैं –

ज्वार + उड़द/मूंग; ज्वार + लोबिया/ग्वार; ज्वार + सोयाबीन; ज्वार + अरहर; ज्वार + तिल; ज्वार + अरण्डी।

देश के विभिन्न क्षेत्रों में ज्वार आधारित कुछ प्रमुख फसल चक्र निम्नलिखित हैं –

उत्तरी भारतः ज्वार–गेहूं/जौ; ज्वार–चना/मटर/मसूर; ज्वार–बरसीम; ज्वार–आलू–मूंग; ज्वार–आलू–गेहूं ; ज्वार–लाही–बसंतकालीन गन्ना।

दक्षिणी भारतः मूंगफली–ज्वार–अरहर; ज्वार–धान–धान; ज्वार–कपास; कपास–ज्वार–चना; ज्वार–मंडुआ–तम्बाकू।

उन्नत किस्में

ज्वार की नई किस्में अपेक्षाकृत बौनी हैं और उनमें अधिक उपज देने की क्षमता है। ये किस्में उपयुक्त मात्रा में खाद, उर्वरक एवं पानी के प्रयोग से अच्छी उपज देती हैं और गिरती भी नहीं हैं।

अधिकांश नई किस्में पकने में कम समय लेती हैं। विभिन्न राज्यों के लिए अनुमोदित दाने के लिए ज्वार की उन्नतशील किस्में सारणी–1 में दी गई हैं–

खेत की तैयारी

अच्छी उपज लेने के लिए खेत को अच्छी तरह से तैयार कर लें। इसके लिए पहली जुताई मिट्टी पलटने वाले हल या हैरो से करने के बाद 2–3 जुताई देशी हल या कल्टीवेटर से करें। बोने से पहले पाटा चलाकर खेत को समतल कर लेना चाहिए तथा बुवाई के समय खेत खरपतवार रहित होना चाहिए।

बुवाई

उत्तरी भारत में ज्वार की बुवाई का उचित समय जुलाई का प्रथम सप्ताह है। बारानी क्षेत्रों में मानसून की पहली वर्षा होने के एक सप्ताह के अंदर ज्वार की बुवाई कर देनी चाहिए। देश के दक्षिणी राज्यों जैसे – महाराष्ट्र, कर्नाटक, आन्ध्र प्रदेश तथा तमिलनाडु जहां ज्वार रबी के मौसम में उगाई जाती है, बुवाई 15 सितम्बर से 15 अक्टूबर के मध्य करना अच्छा रहता है।

बीज की मात्रा उसके आकार, अंकुरण प्रतिशत, बुवाई का तरीका एवं समय, बुवाई के समय भूमि में उपस्थित नमी की मात्रा पर निर्भर करती है। साधारणतः एक हेक्टेयर क्षेत्रफल की बुवाई के लिए 12–15 कि.ग्रा. बीज की आवश्यकता पड़ती है। बुवाई से पूर्व बीज को किसी कवकनाशी रसायन जैसे एग्रोसन जीएन या कैप्टान आदि से 2.5 ग्राम प्रति कि.ग्रा. बीज की दर से अवश्य उपचारित कर लेना चाहिए। इसके अतिरिक्त बीज को जैविक खाद एजोस्पीरीलम व पीएसबी से भी उपचारित करने से 15–20 प्रतिशत अधिक उत्पादन लिया जा सकता है। संकर ज्वार की बुवाई के लिए प्रत्येक वर्ष नया बीज ही प्रयोग में लाना चाहिए।

ज्वार की अच्छी उपज प्राप्त करने के लिए एक हेक्टेयर में पौधों की कुल संख्या लगभग 1,50,000 होनी चाहिए। इतने पौधे प्राप्त करने के लिए पंक्ति से पंक्ति की दूरी 45 सें.मी. तथा पंक्ति के अन्दर पौधे से पौधे की दूरी 15 सें.मी. रखी जाए। पंक्ति में बुवाई देशी हल के पीछे कूंडों में या सीड ड्रिल द्वारा की जा सकती है। सीड ड्रिल द्वारा बुवाई करना सर्वोत्तम रहता है क्योंकि इससे बीज समान दूरी पर और समान गहराई पर पड़ता है।

पोषक तत्व प्रबंधन

यदि जैविक खाद जैसे गोबर की खाद, कम्पोस्ट आदि उपलब्ध हों तो 10 टन प्रति हेक्टेयर की दर से बुवाई के 15–20 दिन पूर्व खेत में समान रूप से बिखेर कर भूमि में अच्छी तरह मिला देना चाहिए। जैविक खादों के प्रयोग से भूमि की भौतिक दशा में सुधार होता है तथा भूमि की जलधारण क्षमता भी बढ़ती है। सिंचित दशा में ज्वार की अच्छी उपज प्राप्त करने के लिए 100–120 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 50–60 कि.ग्रा. फॉस्फोरस तथा 40–50 कि.ग्रा. पोटाश प्रति हेक्टेयर की आवश्यकता पड़ती है जबकि असिंचित (बारानी) दशा में 50–60 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 30–40 कि.ग्रा. फॉस्फोरस तथा 30–40 कि.ग्रा. पोटाश प्रति हेक्टेयर पर्याप्त होता है।

सिंचित दशा में नाइट्रोजन की आधी मात्रा एवं फॉस्फोरस और पोटाश की पूरी मात्रा बुवाई के समय फर्टी–सीड–ड्रिल द्वारा भूमि में डालें यदि फर्टी–सीड–ड्रिल उपलब्ध न हो तो उर्वरकों का मिश्रण बनाकर खेत में समान रूप से छिड़कें तथा हैरो या कल्टीवेटर चलाकर भूमि में अच्छी तरह मिला दें। नाइट्रोजन की शेष आधी मात्रा बुवाई के 30–35 दिन बाद खड़ी फसल में छिड़क दें। असिंचित (बारानी) दशा में 2 प्रतिशत यूरिया का 1000 लीटर पानी में घोल बनाकर खड़ी फसल में छिड़काव करना अत्यंत लाभप्रद पाया गया है।

मुख्य पोषक तत्वों के अतिरिक्त यदि भूमि में सूक्ष्म तत्वों की कमी हो तो सूक्ष्म तत्वों का छिड़काव करना भी आवश्यक होता है अन्यथा ज्वार की उपज पर हानिकारक प्रभाव पड़ता है। सूक्ष्म पोषक तत्वों में आयरन तथा जिंक ज्वार के लिए विशेष रूप से महत्वपूर्ण है। इन तत्वों की कमी पूरा करने के लिए जिंक का 0.2 प्रतिशत तथा आयरन का 0.15 प्रतिशत घोल का पर्णीय छिड़काव बुवाई के 35–40 दिन बाद करना चाहिए।

जल प्रबंधन

सामान्यतः ज्वार की खेती असिंचित क्षेत्रों में की जाती है जिन क्षेत्रों में सिंचाई की सुविधा उपलब्ध हो वहां पर खरीफ ऋतु में वर्षा न होने की दशा में सिंचाई कर देनी चाहिए। ज्वार की फसल में पौधों की वृद्धि, फूल तथा दाना बनते समय पानी की अधिक आवश्यकता पड़ती है। अतः इन अवस्थाओं पर सिंचाई करना आवश्यक होता है। ज्वार की फसल के लिए सिंचाई देने की चार क्रान्तिक अवस्थाएं हैं – प्रारंभिक बीज पौधे की अवस्था, भुट्टे निकलने से पहले, भुट्टे निकलते समय तथा भुट्टों में दाना बनने की अवस्थायें।

उपरोक्त अवस्थाओं में पानी का अभाव होने पर ज्वार की वृद्धि एवं उपज पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। सिंचाई के साथ–साथ ज्वार की फसल में उचित जल निकास की भी आवश्यकता होती है। ज्वार की फसल में यदि देर तक पानी खड़ा रहे तो फसल को नुकसान पहुंचता है, इसलिए अतिरिक्त जल को खेत से तुरंत निकाल देना चाहिए।

खरपतवार प्रबंधन

ज्वार की अच्छी उपज लेने के लिए निराई–गुड़ाई करना अति आवश्यक है। निराई–गुड़ाई करने से खरपतवार नियंत्रण के साथ–साथ भूमि में वायु का संचार होता है तथा भूमि में नमी भी सुरक्षित रहती है। बुवाई के लगभग 3 सप्ताह बाद बैल चालित ब्लेड हैरो या हस्त चालित व्हील हो से एक निराई–गुड़ाई कर देनी चाहिए। यदि किसी कारणवश निराई–गुड़ाई संभव न हो तो बुवाई के तुरंत बाद 'एट्राजिन' नामक खरपतवारनाशी की 0.75–1.0 कि.ग्रा. मात्रा का 700–800 लीटर पानी में घोल बनाकर प्रति हेक्टेयर की दर से छिड़काव करना चाहिए।

कीट प्रबंधन

ज्वार की फसल को कीटों द्वारा अत्यधिक हानि होती है, अतः अच्छा उत्पादन प्राप्त करने के लिए सही समय पर इनकी रोकथाम करना आवश्यक है। ज्वार की फसल को नुकसान पहुंचाने वाले मुख्य कीट और उनका नियंत्रण इस प्रकार है–

(i) **तना छेदक** : इसकी गिडार अथवा सूंडियां छोटे पौधों की गोफ को काट देती हैं जिससे गोफ सूख जाती है। इसका प्रभाव बुवाई के 15 दिन बाद से आरंभ होकर फसल में भुट्टे आने के समय तक होता है। पौधे की बढ़वार के साथ ही ये तने में सुरंग सी बना लेती हैं और अन्दर ही अन्दर तने के मुलायम हिस्सों को खाती हैं जिसके परिणामस्वरूप पौधे के वृद्धि भाग की मृत्यु हो जाती है जिसे 'डैड–हर्टस' के नाम से जाना जाता है। इसकी रोकथाम के लिए बुवाई के 25 दिनों बाद कार्बोफ्युरॉन (3 प्रतिशत) दानेदार कीटनाशक 7.5 कि.ग्रा. प्रति है. की दर से डालना चाहिए तथा 10 दिनों के बाद दूसरा बुरकाव इसी मात्रा में पौधों की गोफ में करना चाहिए।

(ii) **पर्ण फुदका (पाइरिला)** : इस कीट का आक्रमण बेमौसम व पेड़ी ज्वार में अधिक पाया गया है। यह कीट पौधों की पत्तियों का रस चूसकर नुकसान पहुंचाता है जिससे पौधों का हरापन कम हो जाता है और पौधे सूख जाते हैं। इस कीट का नियंत्रण सामान्यतया स्वयं ही हो जाता है। अधिक आक्रमण होने पर मोनोक्रोटोफॉस 36 डब्ल्यू एस सी कीटनाशी की 1 लीटर दवा का 600–700 लीटर पानी में घोल बनाकर खड़ी फसल में छिड़काव करना चाहिए।

(iii) **तना मक्खी** : यह ज्वार का एक प्रमुख कीट है। इसका प्रकोप पौधों के जमाव के लगभग 7 दिन बाद से 30 दिन तक होता है। कीट की इल्लियां उगते हुए पौधों की गोफ को काट देती हैं जिससे शुरू की अवस्था में ही पौधे सूख जाते हैं। कुछ पौधों की गोफ सूख जाने के बाद भी कल्ले निकलते हैं पर उनमें भुट्टे देर से आते हैं और उनका आकार भी छोटा होता है। इसके नियंत्रण के लिए कार्बोफ्युरॉन 3 जी या फोरेट 10 जी. बुवाई के समय 20 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर की दर से कूंड़ों में डालना चाहिए। यह कीटनाशक पौधों की जड़ों द्वारा अवशोषित होकर पौधों में पहुंचता है और ऐसे पौधों को खाने के बाद गिडारें मर जाती हैं।

(iv) **ज्वार का मिज़** : यह देश के दक्षिणी राज्यों – महाराष्ट्र, कर्नाटक व तमिलनाडु में ज्वार की फसल को हानि पहुंचाने वाला मुख्य कीट है। यह कीट ज्वार में भुट्टे निकलने के समय फसल को नुकसान पहुंचाता है। इसकी रोकथाम के लिए कार्बारिल 50 डब्ल्यू पी या कार्बारिल 3 डी कीटनाशक का ज्वार में भुट्टे निकलते समय 4–5 दिन के अन्तराल पर दो बार छिड़काव करना चाहिए।

(v) **ज्वार का माइट** : यह बहुत ही छोटा कीट होता है जो पत्तियों की निचली सतह पर जाले बुनकर उन्हीं के अन्दर रहकर पत्तियों से रस चूसता है। ग्रसित पत्ती लाल रंग की हो जाती हैं और बाद में सूख जाती हैं। इसकी रोकथाम अन्य कीटों की रोकथाम के साथ स्वतः ही हो जाती है।

(vi) **बालदार सूंडी** : यह कीट विभिन्न फसलों को नुकसान पहुंचाता है। इस कीट के शरीर पर घने बाल होने के कारण इस कीट को बालदार सूंडी कहा जाता है। इस कीट की छोटी–छोटी सूंडी

पौधे की मुलायम पत्तियों को खा जाती हैं जिससे पौधे की पत्तियों पर केवल शिरायें ही शेष बचती हैं। इस कीट के नियंत्रण के लिए फोलीडोल 2 प्रतिशत धूल का 25–30 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर या थायोडान (35 ई सी) का 0.1 प्रतिशत घोल बनाकर खड़ी फसल में छिड़काव करना चाहिए।

(vii) **माहू (एफिड)** : इस कीट के शिशु एवं वयस्क पौधों का रस चूसते रहते हैं जिससे पौधों की पत्तियों के किनारे पर पीली–नीली धारियां दिखाई पड़ती हैं। इस कीट के प्रकोप से तरल द्रव बनने लगता है जिससे फसल पर फंफूदी का आक्रमण होने लगता है और दाने की गुणवत्ता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। इसकी रोकथाम के लिए मेटासिस्टॉक्स 25 ई सी की एक लीटर मात्रा का प्रति हेक्टेयर की दर से 500–600 लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करना चाहिए।

ज्वार की फसल को भुट्टे लगने के समय से लेकर कटाई तक चिड़ियों से भी बहुत नुकसान पहुंचता है। अतः फसल को नुकसान से बचाने के लिए चिड़ियों से रखवाली करना भी बहुत आवश्यक है।

रोग प्रबंधन

(i) **दाने का कंड (स्मट)** : यह ज्वार का सबसे हानिकारक कवक जनित रोग है। इसका प्रकोप पौधों में भुट्टे निकलते समय होता है। यह मुख्यतः बीज द्वारा फैलता है। इस कवक के बीजाणु अंकुरण के समय जड़ों द्वारा पौधों में प्रवेश कर जाते हैं। पौधों में भुट्टे आने पर दानों की जगह कवक के काले बीजाणु भर जाते हैं। बीजाणु बाहर से एक कड़ी झिल्लीदार परत से ढके रहते हैं जिसके फटने पर वे बाहर आकर फैल जाते हैं। इसकी रोकथाम के लिए बीज को किसी कवकनाशी दवा जैसे–केप्टान या वीटावैक्स पावर से 2.5 ग्राम प्रति कि.ग्रा. बीज की दर से उपचारित करके बुवाई करें।

(ii) **अर्गट** : संकर ज्वार में इस रोग का प्रकोप अधिक होता है। इस बीमारी के बीजाणु हवा द्वारा फैलते हैं तथा बीमारी का प्रकोप फसल में फूल आने के समय होता है। पुष्प शाखा पर स्थित स्पाइकिल से हल्के गुलाबी रंग का गाढ़ा व चिपचिपा शहद जैसा पदार्थ निकलता है जो मनुष्य तथा पशुओं दोनों के लिए हानिकारक होता है। अर्गट रोग से ग्रसित भुट्टों को काटकर जला देना चाहिए। भुट्टों में दाना बनने की अवस्था पर थिरम (0.2 प्रतिशत) के 2–3 छिड़काव करके रोग के प्रभाव को काफी हद तक कम किया जा सकता है।

(iii) **ज्वार का किट्ट** : यह भी एक कवक जनित रोग है। इस रोग का असर पहले पौधे की निचली पत्तियों पर दिखाई पड़ता है और बाद में ऊपर की पत्तियों पर भी फैल जाता है। पत्तियों पर लाल या बैंगनी रंग के धब्बे पड़ जाते हैं और पत्तियां समय से पहले ही सूख जाती हैं। किट्ट रोग की रोकथाम के लिए रोगरोधी किस्में उगानी चाहिए और पौधों पर रोग के लक्षण दिखाई देने पर डाइथेन एम–45 (0.2 प्रतिशत) नामक कवकनाशी का 10 दिन के अन्तराल पर दो बार छिड़काव करना चाहिए।

(iv) **जड़ विगलन** : ज्वार की फसल में यह रोग कवक द्वारा फैलता है। यह बीमारी मृदा तथा बीज दोनों के द्वारा फैलती है परन्तु मृदा द्वारा यह बीमारी मुख्य रूप से फैलती है। फसल में बीमारी

के लक्षण बुवाई के 30–35 दिन बाद दिखाई देते हैं। रोगग्रसित पौधों की बढ़वार रूक जाती है पत्तियां मुड़ जाती हैं तथा पुरानी पत्तियों का ऊपरी भाग पीला पड़ जाता है। बीमारी का प्रकोप अधिक होने पर पौधों की संपूर्ण पत्तियां पीली पड़ जाती हैं और पौधे मर जाते हैं। इस रोग की रोकथाम के लिए बीजों को बोने से पूर्व किसी कवकनाशी रसायन जैसे थिरम या केप्टान 2.5 ग्रा. प्रति कि.ग्रा. बीज दर से उपचारित करना चाहिए तथा ज्वार की रोगरोधी प्रजातियां उगानी चाहिए।

(v) **मृदुरोमिल आसिता (डाउनी मिल्ड्यू)** : रोग के लक्षण पौधों की ऊपरी नई पत्तियों पर पहले दिखाई पड़ते हैं जिसमें पत्तियों की निचली सतह पर सफेद रंग का चूर्ण जमा हो जाता है। रोगग्रसित पत्तियां पीली पड़कर झड़ जाती हैं। यदि रोग का आक्रमण फसल की प्रारंभिक अवस्था में हो जाता है तो पौधों की वृद्धि रूक जाती है तथा पौधों में भुट्टे नहीं निकलते। रोग की रोकथाम के लिए रोगरोधी प्रजातियां उगानी चाहिए, रोगग्रस्त पौधों को उखाड़कर जला देना चाहिए, बीज को बुवाई से पूर्व एपरान–35 एस डी या रिडोमील एम जेड–72 से 2.5 ग्राम प्रति कि.ग्रा. बीज दर से उपचारित करना चाहिए तथा फसल पर रिडोमिल (0.1 प्रतिशत) का छिड़काव करना चाहिए।

(vi) **तना–विगलन (चार कोल विगलन)** : इस रोग का प्रकोप तमिलनाडु व महाराष्ट्र में रबी में उगाई जाने वाली ज्वार की फसल पर अधिक देखा गया है। यदि रोग का आक्रमण छोटी अवस्था में होता है तो पौधा सूख जाता है। बड़े पौधों पर इसका प्रभाव होने पर भुट्टे छोटे रह जाते हैं तथा समय से पहले ही पक जाते हैं; तना कमजोर और खोखाला हो जाता है और अक्सर पौधे गिर जाते हैं। तने के निचले भाग के पिथ में कवक के काले रंग की बढ़वार दिखाई देती है क्योंकि यह रोग मृदा द्वारा फैलता है अतः इसके प्रभावी नियंत्रण के लिए फसल चक्र व अन्तः फसलीकरण प्रणाली अपनानी चाहिए। फसल में नाइट्रोजन का कम प्रयोग करना चाहिए तथा भूमि में नमी संरक्षण की विधियां अपनानी चाहिए।

कटाई

ज्वार की विभिन्न किस्में 100–130 दिन में पककर तैयार हो जाती हैं। फसल पकने पर भुट्टे के हरे दाने सफेद या पीले रंग में बदल जाते हैं। भुट्टों में दानों के अन्दर जब नमी घटकर 20 प्रतिशत तक रह जाए तो फसल की कटाई कर लेनी चाहिए। संकर ज्वार में फसल पकने तक पौधे हरे बने रहते हैं। अतः खड़ी फसल से भुट्टों की कटाई हंसिया या दराँती से करके, फसल को चारे के रूप में खिलाते रहते हैं। पौधों से भुट्टे अलग करने के बाद, पौधों को सुखाकर कड़वी (सूखे चारे) के रूप में रखा जाता है।

मड़ाई

कटाई के पश्चात् ज्वार के भुट्टों को खलिहान में कम से कम एक सप्ताह तक सूखने देना चाहिए। भुट्टों की मड़ाई डण्डों से पीटकर, बैलों द्वारा दांय चलाकर या थ्रेशर द्वारा कर लेते हैं। मड़ाई के तुरंत बाद ओसाई करके दानों को भूसे से अलग कर लिया जाता है।

उपज

ज्वार की खेती यदि उन्नत सस्य विधियां अपनाकर की जाए तो संकर ज्वार से सिंचित दशा में औसतन 35–40 क्विंटल दाने तथा 100–120 क्विंटल कड़वी और असिंचित (बारानी) क्षेत्रों में 20–25 क्विंटल दाने तथा 70–80 क्विंटल कड़वी प्रति हेक्टेयर प्राप्त हो जाती है।

सारणी 1 : दाने के लिए ज्वार की उन्नत किस्में

राज्य	खरीफ ज्वार		रबी ज्वार	
	संकर	संकुल	संकर	संकुल
महाराष्ट्र	सी एस एच 14, सी एस एच 9, सी एस एच 16, सी एस एच 18	सी एस वी 13, सी एस वी 15, एस पी वी 699	सी एस एच 13 आर, सी एस एच 15 आर	सी एस वी 83, सी एस वी 143, एस पी वी 21 आर स्वाति, एम 35–1
कर्नाटक	सी एस एच 14, सी एस एच 17, सी एस एच 16, सी एस एच 13, सी एस एच 18	एस वी 1066, डी एस वी 1, डी एस वी 2, सी एस वी 10, सी एस वी 11, सी एस वी 15	सी एस एच 13 आर, सी एस एच 15 आर, सी एस एच 19 आर	एन टी जे 3, सी एस वी 8 आर, एम 35–1, डी एस वी 5, सी एस वी 21 आर
आन्ध्र प्रदेश	सी एस एच 14, सी एस एच 13, सी एस एच 16, सी एस एच 18, सी एस एच 9, सी एस एच 1	सी एस वी 10, सी एस वी 11, सी एस वी 15, एस पी वी 462, मोती	सी एस एच 13 आर, सी एस एच 15 आर, सी एस एच 12 आर, सी एस एच 19 आर	सी एस वी 14 आर, मोती, एन टी जे 2, एम 35–1, सी एस वी 216 आर
मध्य प्रदेश	सी एस एच 11, सी एस एच 13, सी एस एच 16, सी एस एच 17, सी एस एच 18	सी एस वी 15, एस पी वी 235, जे जे 741, जे जे 938, जे जे 1041	–	–
गुजरात	सी एस एच 9, सी एस एच 13, सी एस एच 16, सी एस एच 17, सी एस एच 18	सी एस वी 13, सी एस वी 15, जी जे 35, जी जे 38, जी जे 40, जी जे 39, जी जे 41	सी एस एच 8 आर, सी एस एच 12 आर, सी एस एच 15 आर, सी एस एच 19 आर	सी एस वी 14 आर, सी एस वी 8 आर, सी एस वी 216 आर
राजस्थान	सी एस एच 14, सी एस एच 13, सी एस एच 16, सी एस एच 18	सी एस वी 10, सी एस वी 13, सी एस वी 15, एस पी वी 96	–	–

तमिलनाडु	सी एस एच 14, सी एस एच 17, सी एस एच 13, सी एस एच 16, सी एस एच 18	एस पी वी 881, सी ओ 24, सी ओ 25, सी ओ 26, सी एस वी 13, सी एस वी 15, सी ओ 27, सी ओ (एस) 28	सी एस एच 15 आर, सी एस एच 5, सी ओ एच 13 आर, सी ओ एच 3	सी ओ 24, सी ओ 25, सी ओ 26, सी एस वी 14 आर, सी एस वी 8 आर, सी एस वी 216 आर
उत्तर प्रदेश	सी एस एच 13, सी एस एच 14, सी एस एच 16, सी एस एच 18	सी एस वी 10, सी एस वी 11, सी एस वी 15	–	–

बाजरा

जलवायु

इसकी खेती गर्म जलवायु तथा 50–60 सें.मी. वर्षा वाले क्षेत्रों में अच्छी तरह से की जा सकती है। बाजरे की फसल भारी वर्षा वाले उन क्षेत्रों में अच्छी तरह की जा सकती है जहां पर पानी का भराव न हो। इस फसल के लिए सबसे उपयुक्त तापमान 32–37^0 से. माना गया है इसलिए इसकी बुवाई जुलाई माह में कर देनी चाहिए।

मृदा

बाजरा की फसल जल निकास वाली सभी तरह की भूमियों में उगाई जा सकती है। बाजरा के लिए भारी मृदा अनुकूल नहीं रहती है। बाजरा के लिए अधिक उपजाऊ भूमियों की भी आवश्यकता नहीं होती हैं इसके लिए बलुई दोमट मृदा अत्यंत उपयुक्त होती है।

फसल चक्र

मृदा की उर्वरता बनाए रखने के लिए फसल चक्र अपनाना महत्वपूर्ण है। बाजरा के लिए एक वर्षीय फसल चक्र अपनाना ठीक है जैसे –

बाजरा – गेहूं या जौं

बाजरा – चना या मटर या बरसीम

बाजरा – गेहूं – मक्का (चारा के लिए)

बाजरा – मसूर – मूंग

उन्नत किस्में

विभिन्न राज्यों के लिए बाजरे की उपयुक्त संकर किस्में निम्न हैं–

राजस्थान – आर एच डी 30, आर एच डी 21

उत्तर प्रदेश – पूसा 415

हरियाणा – एच एच बी 50, एच एच बी 67, पूसा 23, पूसा 415, पूसा 605, पूसा 322, एच एच डी 68, एच एच बी 117, एच एच बी इम्प्रूव्ड

गुजरात – पूसा 23, पूसा 605, पूसा 415, पूसा 322, जी एच बी 15, जी एच बी 30, जी एच बी 318, नंदी 8

महाराष्ट्र – पूसा 23, एल एल बी एच 104, श्रद्धा, सतूरी, एम एल बी एच 285

कर्नाटक – पूसा 23

आन्ध्र प्रदेश – आई सी एम वी 155, आई सी एम वी 221

संकुल किस्में

राजस्थान : राज बाजरा चारी 2, राज 171, पूसा कम्पोजिट 266, पूसा कम्पोजिट 643
उत्तर प्रदेश : पूसा कम्पोजिट 383, पूसा कम्पोजिट 266, पूसा कम्पोजिट 234
हरियाणा : एच सी 4, एच सी 10, पूसा कम्पोजिट 383, पूसा कम्पोजिट 266, पूसा कम्पोजिट 334
गुजरात : पूसा कम्पोजिट 383, पूसा कम्पोजिट 266
महाराष्ट्र : पूसा कम्पोजिट 383, पूसा कम्पोजिट 612, आई सी टी पी 8203

पूसा संस्थान द्वारा विकसित बाजरा की प्रमुख किस्मों का उल्लेख सारणी 1 में किया गया है।

सारणी 1. पूसा संस्थान द्वारा विकसित बाजरा की प्रमुख किस्में

(क) बारानी एवं सिंचित अवस्था के लिए

किस्म	अनुमोदित वर्ष	अनुमोदित क्षेत्र / परिस्थिति	उपज (क्विं / है.)	विशेषताएं
संकर बाजरा पूसा 415	1999	राजस्थान, गुजरात, हरियाणा, मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश, पंजाब एवं दिल्ली / बारानी एवं सिंचित अवस्थाओं में बुवाई के लिए	23–25	यह किस्म 75–78 दिनों में पककर तैयार हो जाती है तथा डाउनी मिल्ड्यू रोग की प्रतिरोधी है तथा इस किस्म में सूखा के प्रति सहिष्णुता है।
संकर बाजरा पूसा 605	1999	राजस्थान, गुजरात, हरियाणा, मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश, पंजाब एवं दिल्ली / बारानी एवं सिंचित अवस्थाओं में बुवाई के लिए	22–24	यह किस्म 74–80 दिनों में पककर तैयार हो जाती है तथा डाउनी मिल्ड्यू रोग की प्रतिरोधी है तथा बारानी एवं सिंचित अवस्थाओं में इसका अच्छा प्रदर्शन रहता है।
संकुल बाजरा पूसा 383	2001	राजस्थान, गुजरात, हरियाणा, मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश, पंजाब एवं दिल्ली / बारानी एवं सिंचित अवस्थाओं में बुवाई के लिए	22–24	किसान थोड़े से प्रशिक्षण से अपनी उपज को बीज के रूप में प्रयोग कर सकते हैं। यह एक दोहरे उपयोग वाली किस्म है तथा दानों के अलावा इसका तना पशुओं का पौष्टिक आहार है।
संकुल बाजरा पूसा 612	अप्रैल 2008 में चिन्हित की गई	महाराष्ट्र, तमिलनाडु, कर्नाटक, आंध्र प्रदेश / बारानी एवं सिंचित अवस्थाओं में बुवाई के लिए	25	यह एक दोहरे उपयोग वाली किस्म है जो चारा तथा दानों के रूप में प्रयोग की जा सकती है। यह किस्म 80–85 दिनों में पकती है तथा डाउनी मिल्ड्यू बीमारी के प्रति प्राकृतिक परिस्थितियों में प्रतिरोधक है। यह सामान्य व पछेती बुवाई के लिए उपयुक्त है।

(ख) बारानी अवस्था के लिए

संकुल बाजरा पूसा 443	2008	राजस्थान, गुजरात, हरियाणा/ बारानी अवस्थाओं में बुवाई के लिए	18	यह एक शीघ्र पकने व बढ़ने वाली किस्म है जो डाउनी मिल्ड्यू बीमारी की प्रतिरोधी है तथा जल अभाव वाली परिस्थितियों जहां 400 मि.मी. से कम वर्षा होती है, के लिए उपयुक्त है।

खेत की तैयारी

एक जुताई मिट्टी पलटने वाले हल से करनी चाहिए। इसके बाद दो–तीन जुताइयां देशी हल, हैरो या कल्टीवेटर चलाकर उसके साथ पाटा लगाकर खेत को समतल कर लेना चाहिए। दीमक के बचाव के लिए आखिरी जुताई के समय 25 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर की दर से फॉरेट को खेत में छिड़क देना चाहिए।

बुवाई

उत्तरी भारत में बाजरे की बुवाई मानसून की पहली बरसात के साथ कर देनी चाहिए। बुवाई के लिए 5 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर बीज की आवश्यकता होती हैं। किसी कारण से बाजरा की बुवाई समय पर नहीं की जा सके तो बाजरा की फसल देरी से बोने की अपेक्षा उसे रोपना अधिक लाभप्रद होता है। एक हेक्टेयर क्षेत्र में पौधे रोपने के लिए लगभग 500–600 वर्ग मीटर में 2–2.5 कि.ग्रा. बीज जुलाई माह में बोया जाना चाहिए। पौधे अच्छी तरह से उगें उसके लिए क्यारियों में 12–15 कि.ग्रा. यूरिया प्रयोग करना चाहिए। लगभग 2 से 3 सप्ताह की पौध रोपनी चाहिए। जब पौधों को क्यारियों से उखाड़ें तो क्यारियों को नम बनाए रखना चाहिए ताकि जड़ों को क्षति न पहुंचे। जहां तक संभव हो, रोपाई वर्षा वाले दिन करनी चाहिए। पंक्तियों से पंक्तियों की दूरी 50 सें.मी. एवं पौधे से पौधे की दूरी 10 सें.मी. रखते हुए एक छेद में केवल एक पौधा रोपें। जुलाई के तीसरे सप्ताह से अगस्त के दूसरे सप्ताह तक रोपाई करने से अच्छी पैदावार मिलती है।

पोषक तत्व प्रबंधन

सिंचित क्षेत्र के लिए : नाइट्रोजन – 80 कि.ग्रा., फॉस्फोरस – 40 कि.ग्रा. व पोटाश – 40 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर

बारानी क्षेत्रों के लिएः नाइट्रोजन – 60 कि.ग्रा., फास्फोरस – 30 कि.ग्रा. व पोटाश – 30 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर

सभी परिस्थितयों में नाइट्रोजन की आधी मात्रा तथा फॉस्फोरस और पोटाश की पूरी मात्रा लगभग 3–4 सें.मी. की गहराई पर डालनी चाहिए। नाइट्रोजन की बची हुई मात्रा अंकुरण से 4–5 सप्ताह बाद खेत में बिखेरकर मिट्टी में अच्छी तरह मिला देनी चाहिए।

जल प्रबंधन

जिन स्थानों पर सिंचाई का साधन है वहां पर फूल आने की स्थिति में सिंचाई करना लाभप्रद होता है। वर्षा बिल्कुल न हो तो 2–3 सिंचाइयों की आवश्यकता पड़ती है। पौधों में फुटान होते समय, बालियां निकलते समय तथा दाना बनते समय नमी की कमी नहीं होनी चाहिए। बालियां निकलते समय नमी का विशेष ध्यान रखना चाहिए। बाजरा जल प्लावन से भी प्रभावित होता है, अतः ध्यान रहे कि खेत में पानी इकट्ठा न होने पाये।

खरपतवार प्रबंधन

एक कि.ग्रा. एट्राजिन प्रति हेक्टेयर के हिसाब से 500–600 लीटर पानी में घोल बनाकर का छिड़काव करते हैं। यह छिड़काव बुवाई के बाद तथा अंकुरण से पूर्व करते हैं। इसके साथ–साथ 20–40 दिन के अन्दर एक बार खुरपी या कसौला से खरपतवार निकाल देने चाहिए।

कीट प्रबंधन

साधारणतया बाजरा की फसल में कीट पतंगों से अधिक नुकसान नहीं होता है लेकिन अच्छी उपज प्राप्त करने के लिए फसल की कीटों से देखभाल करना आवश्यक है। बाजरा की फसल में निम्न कीटों का प्रायः असर देखा गया है–

दीमक

दीमक के प्रकोप को रोकने के लिए 3–4 लीटर प्रति हेक्टेयर के हिसाब से क्लोरोपाइरोफॉस का पौधों की जड़ों में छिड़काव करना चाहिए।

तना मक्खी

इसकी गिडारें तथा इल्लियां प्रारंभिक अवस्था में पौधों की बढ़वार को काट देती हैं जिससे पौधा सूख जाता है। इसकी रोकथाम के लिए 15 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर की दर से फोरेट या 25 कि.ग्रा. फ्युराडान (3 प्रतिशत) दानेदार को खेत में डालना चाहिए।

तना बेधक

इसका असर पत्तियों पर अधिक होता है तथा बाद में गिडार तने को भी खाती है। इसकी रोकथाम के लिए एक लीटर मोनोक्रोटोफास का 600–800 लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करना चाहिए।

मिज

इसका असर प्रायः बालियों के आते समय देखा गया है। इसके साथ–साथ पत्तियों पर खाने वाले कीटों का असर भी दिखाई दे तो 3 प्रतिशत फोरेट को 25 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर की दर से धूल छिड़कना चाहिए।

रोग प्रबंधन

हरित बाली रोग : यह फंफूदी से पैदा होने वाला रोग है इसे मृदुरोमिल आसिता भी कहते हैं। इसके प्रभाव से पत्तियों का रंग पीला पड़ जाता है, पौधों की बढ़वार रूक जाती है। सुबह के समय पत्तियों की निचली सतह पर एक सफेद पाउडर जैसा पदार्थ दिखाई देता है। कभी–कभी प्रभावित पौधों में बालियां नहीं बनती हैं। जब यह बीमारी फसल पर बालियां आने की अवस्था में आक्रमण करती है तो इसे हरी बालियों वाली बीमारी कहते हैं क्योंकि इसमें बालियों पर दानों के स्थान पर छोटी–छोटी हरी पत्तियां उग आती हैं। खेत में रोगग्रस्त पौधों को समय–समय पर उखाड़ कर जला देना चाहिए। कम से कम तीन वर्ष का फसल चक्र भी रोग को रोकने में सहायक होता है। बोने से पहले बीजों को अप्रोन–35 एस डी या रिडोमील एम जेड–72 से 3 ग्राम प्रति कि.ग्रा. की दर से उपचारित करें। रोग की व्यापकता को कम करने के लिए रोग के प्रारंभिक लक्षण दिखाई देते ही कवकनाशी रिडोमील एम जेड–72 (2.5 ग्रा./लीटर पानी) से छिड़काव करना चाहिए।

अर्गट

यह बीमारी फसल पर बालियां बनने की अवस्था में नुकसान पहुंचाती है। इस बीमारी के लक्षण के रूप में बालियों पर शहद जैसी चिपचिपी बूंदें दिखाई देती हैं। शहद के समान वाला पदार्थ कुछ दिनों बाद सूखकर गाढ़ा पड़ जाता है इसे अर्गट के नाम से जाना जाता है। अर्गट कटाई के समय खेत की मिट्टी में मिल जाता है और अगले वर्ष भी बाजरा की फसल को नुकसान पहुंचाता है। इसकी रोकथाम के लिए बाजरा की बुवाई जुलाई के पहले पखवाड़े में कर दें ताकि फसल में फूल आने के समय मौसम अधिक नम व ठन्डा न रहे। रोग के प्रकोप को कम करने के लिए कम से कम तीन वर्ष का फसल चक्र अपनाना चाहिए। खेत से रोगग्रस्त बालियों को समय–समय पर काट कर जला देना चाहिए। बीजों में मिले रोगजनक स्केलेरोशिया को दूर करने के लिए बीजों को 10 प्रतिशत नमक के घोल में डालकर अलग कर देना चाहिए। रोग की व्यापकता को कम करने के लिए कवकनाशी बाविस्टीन 1 कि.ग्रा. 1000 लीटर पानी में प्रति हेक्टेयर की दर से छिड़काव करना चाहिए तथा बीज को बाविस्टीन (2 ग्रा./कि.ग्रा.) से उपचारित करें।

कटाई एवं गहाई

जब फसल पककर तैयार हो जाए तो उस अवस्था में बालियों को काटकर अलग कर लेना चाहिए। इन बालियों को एक जगह खलियान में इकट्ठा करके सुखा लें और थ्रेशर से दाना अलग कर लेते हैं।

उपज

यदि उन्नत सस्य विधियां अपनाकर बाजरा की फसल उगाई जाए तो सिंचित अवस्था में इसकी उपज 30–35 क्विंटल दाना तथा 100 क्विंटल सूखा चारा प्रति हेक्टेयर तथा असिंचित अवस्था में 15–20 क्विंटल दाना तथा 60–70 क्विंटल सूखा चारा प्रति हेक्टेयर मिल जाता है।

अरहर

जलवायु

अरहर आर्द्र तथा शुष्क दोनों ही प्रकार के गर्म क्षेत्रों में भली प्रकार उगाई जा सकती है। लेकिन शुष्क भागों में इसे सिंचाई की आवश्यकता होती है। फसल की प्रारंभिक अवस्था में पौधों की अच्छी वृद्धि के लिए नम जलवायु की आवश्यकता होती है। इसे 75–100 सें.मी. वर्षा वाले क्षेत्रों में सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है।

मृदा

भूमि का चयन करते समय ध्यान रखना चाहिए कि खेत ऊंचा एवं समतल हो तथा उसमें जल निकास अच्छा हो। अरहर को अधिकांश मृदाओं में उगाया जा सकता है। उत्तर भारत में अरहर को मटिमार दोमट मिट्टी से लेकर रेतीली दोमट मिट्टी में उगाया जाता है। अरहर की फसल के लिए बलुई–दोमट अथवा दोमट मिट्टी जिसका पी एच मान 6.5 से 7.5 के बीच हो और भूमि जल का तल गहराई पर हो, सर्वोत्तम रहती है।

फसल चक्र

अरहर की शीघ्र पकने वाली किस्मों जो 130–160 दिनों में पक जाती है, उनके विकास होने से अरहर के बाद रबी की फसल की बुवाई संभव हुई है। इन किस्मों की बुवाई जून के प्रथम पखवाड़े में की जाती है और दिसम्बर के प्रथम सप्ताह तक फसल की कटाई कर ली जाती है। अरहर के साथ बहुत से फसल चक्र अपनाए जाते हैं–

अरहर + बाजरा/ज्वार/मक्का/तिल/सोयाबीन/उडद/मूंग आदि
अरहर – गेहूं
अरहर – गेहूं – मूंग
अरहर – गन्ना
मूंग (ग्रीष्म) + अरहर – गेहूं
अरहर (अति अगेती) – आलू – उड़द
अरहर + उड़द – मसूर/तारामीरा (बारानी क्षेत्रों में)

उन्नत किस्में

भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान तथा विभिन्न कृषि विश्वविद्यालयों द्वारा भारतवर्ष में उत्तरी क्षेत्रों के लिए अनेक किस्मों का विकास किया गया है जिनकी औसत उपज लगभग 20 से 25 क्विंटल/हेक्टेयर है। उनके बारे में विस्तृत जानकारी निम्नलिखित सारणी में दी गई है –

प्रक्षेत्र	किस्में	जारी करने का वर्ष	क्षेत्रों की ग्रहयता
उत्तर–पश्चिमी क्षेत्र	पी पी एच 4 (हाइब्रिड) (एस डी)	1994	पंजाब
(उत्तर प्रदेश, हरियाणा,	पूसा 992 (एस डी)	2002	संपूर्ण क्षेत्र
पंजाब और उत्तरी	पूसा 991	2005	संपूर्ण क्षेत्र
राजस्थान)	पूसा 2001	2006	संपूर्ण क्षेत्र
	पूसा 2002	2008	संपूर्ण क्षेत्र
उत्तरी–पूर्वी क्षेत्र	आजाद (एल डी)	1999	उत्तर प्रदेश, बिहार
(मध्यम और पूर्वी	विरसा अरहर–1 (एम डी)	1992	बिहार के पहाड़ी
उत्तर प्रदेश, बिहार,	(डब्ल्यू आर)		क्षेत्र
पश्चिम बंगाल और	पूसा–9 (एल डी) (प्री रबी) (ए आर)	1993	संपूर्ण क्षेत्र
आसाम	नरेन्द्र अरहर–1 (एल डी) (एस एम आर)	1997	पूर्वी उत्तर प्रदेश
	बी. 7 (श्वेता) (एल डी)	1982	पश्चिम बंगाल
	एम ए एल 13 (एल डी)	2004	संपूर्ण क्षेत्र
उत्तर–पहाड़ी क्षेत्र	आई सी पी एल 151 (जागृति) (एस डी)	1989	संपूर्ण क्षेत्र
(हिमाचल प्रदेश,			हिमाचल प्रदेश के
जम्मू–कश्मीर और	आई सी पी एल 85010	1994	मैदानी भाग
उत्तर प्रदेश के	आई सी पी एच 8 (हाइब्रिड) एस डी	1991	संपूर्ण क्षेत्र
पहाड़ी क्षेत्र)			

एस डी : छोटी अवधि में पकने वाली
एल डी : लम्बी अवधि में पकने वाली
ए आर : आल्टरनेरिया रोधी
एस एम आर : स्टरीलीटी मोजैक रोधी
प्री. रबी : रबी पूर्व
डब्ल्यू आर : विल्ट रोधी

खेत की तैयारी

अरहर की फसल उगाने के लिए खेत की अच्छी तैयारी होनी चाहिए। रबी की फसल की कटाई के बाद खेत की गहरी जुताई करके खुला छोड़ देना चाहिए, जिससे कि भूमि में उपस्थित कीड़े सूर्य की गर्मी से मर जाएं। अरहर बोने से पहले खेत में सिंचाई करते हैं। दो या तीन दिन बाद खेत जुताई योग्य होने पर देशी हल या कल्टीवेटर या हैरो से खेत की दो–तीन बार जुताई की जाती है तथा साथ ही पाटा चलाकर खेत को समतल कर देते हैं।

बुवाई

जहां सिंचाई की सुविधा उपलब्ध हो, वहां जून के प्रथम सप्ताह में बुवाई करना लाभप्रद रहता है। उत्तरी–पश्चिमी क्षेत्रों जैसे पंजाब, हरियाणा, राजस्थान, दिल्ली एवं पश्चिमी उत्तर प्रदेश के इलाके में जून के दूसरे सप्ताह में पलेवा करके अरहर की अगेती किस्मों की बुवाई करें। अति अगेती किस्में

मानसून की पहली बरसात के बाद भी बो सकते हैं। उत्तर–पूर्वी क्षेत्रों जैसे बिहार, बंगाल और पूर्वी उत्तर प्रदेश में अरहर की बुवाई मानसून की पहली बरसात के बाद जून के अंतिम सप्ताह में शुरू होती है। बीज बोने से पहले उसे जीवाणु टीका तथा फंफूदीनाशक दवा से उपचारित करें। पहले बीज को फंफूदीनाशक दवा बाविस्टीन 2 ग्राम प्रति कि.ग्रा. बीज की दर से उपचारित करना चाहिए। उसके बाद ही जीवाणु टीका से उपचारित करें।

जून माह या जुलाई के प्रथम सप्ताह में बोते समय पंक्ति से पंक्ति की दूरी 50 सें.मी. तथा पंक्ति में पौधे से पौधे की दूरी 15 सें.मी. होनी चाहिए। रबी पूर्व अरहर की बुवाई में पंक्ति से पंक्ति की दूरी 30 सें.मी. तथा पौधे से पौधे की दूरी 10 सें.मी. होनी चाहिए। खरीफ में जहां पानी खड़ा रहने की समस्या होती है वहां उठी हुई क्यारियों में कूंड सिंचाई विधि द्वारा बुवाई करनी चाहिए। बीज की मात्रा 15–20 कि.ग्रा./हेक्टेयर होनी चाहिए जोकि बीज के आकार और बुवाई में पंक्तियों एवं पौधों की दूरी पर निर्भर करती है।

पोषक तत्व प्रबंधन

दलहनी फसल होने के कारण, अरहर के पौधे अपनी नत्रजन की आवश्यकता मुख्यतः स्वयं अपनी जड़ों में पाए जाने वाली ग्रन्थिकाओं द्वारा वायुमण्डलीय नत्रजन का यौगिकीकरण करके कर लेते हैं। बलुई–दुमट या दुमट भूमियों में, जहां नत्रजन की मात्रा कम हो, प्रति हेक्टेयर करीब 20 से 30 कि.ग्रा. नत्रजन डालना आवश्यक होता है। फास्फोरस तथा पोटाश के लिए मृदा परीक्षण करना आवश्यक है। यदि भूमि में उपस्थित फास्फोरस एवं पोटाश की मात्रा कम हो, तो प्रति हेक्टेयर 80 से 100 कि.ग्रा. फास्फोरस तथा 40 से 60 कि.ग्रा. पोटाश डालना चाहिए। अरहर की अगेती किस्मों के लिए प्रति हेक्टेयर 20 कि.ग्रा. नत्रजन, 60 कि.ग्रा. फास्फोरस और 40 कि.ग्रा. पोटाश की सिफारिश की गई है।

जल प्रबंधन

जून के प्रथम सप्ताह में बोई गई फसल को वर्षा प्रारंभ होने से पहले दो या तीन हल्की सिंचाई देनी आवश्यक होती है। यदि वर्षा का वितरण ठीक प्रकार से न हो और मौसम लम्बे समय तक सूखा रहे तो एक सिंचाई फूल निकलने के पहले और दूसरी उसके उपरांत फलियां बनते समय देनी चाहिए। अंतिम सिंचाई फसल की कटाई के 7 दिन पहले दें और फसल काटकर अगली फसल की बुवाई के लिए खेत तैयार करें जिसमें समय की बचत होगी और गेहूं की फसल भी समय पर बोई जा सकेगी। खड़े पानी में अरहर की फसल को काफी नुकसान होता है, इसलिए खेत में जल निकास का समुचित प्रबंध होना आवश्यक है। ऐसे स्थानों पर जहां पानी खड़ा रह जाता है, मेंड़ों पर उगाई गई अरहर की फसल से पैदावार अधिक होती है।

खरपतवार प्रबंधन

बुवाई के 45–50 दिन तक खरपतवारों की रोकथाम करना आवश्यक होता है। इसके बाद फसल की बढ़वार जोर पकड़ लेती है और खरपतवार कोई विशेष हानि नहीं पहुंचा पाते। खुरपी या कसौला

के द्वारा फसल बुवाई के 30 और 45 दिन बाद दो निराई–गुड़ाई करके खरपतवारों पर नियंत्रण पाया जा सकता है। खरपतवार नियंत्रण के लिए रसायनों का भी प्रयोग किया जा सकता है इसके लिए एलाक्लोर (2 कि.ग्रा./हेक्टेयर) या पैन्डीमेथालिन (1 कि ग्रा /हेक्टेयर की दर से) 600 लीटर पानी में घोल बनाकर बुवाई के बाद तथा उगने से पहले छिड़क दें। इसके अलावा फ्लुक्लोरेलिन 1 कि ग्रा प्रति हेक्टेयर 600 लीटर पानी में घोल बनाकर बीज बोने से पहले छिड़काव करके भूमि की ऊपरी सतह में मिला देने से खरपतवार नष्ट हो जाते हैं। अरहर में अन्तःफसलीकरण/मिश्रित खेती से भी खरपतवारों का प्रकोप कम होता है।

कीट प्रबंधन

अरहर की फसल को अनेक प्रकार के कीटों से क्षति पहुंचती है, लेकिन मुख्य हानिकारक कीट हैं : फली बेधक, प्लूम माथ, अरहर की फली बेधक मक्खी, फली बग, गेल्युसिड बीटल और जैसिड आदि।

फली बेधक : यह अरहर का मुख्य हानिकारक कीट है। युवा कीट पत्तियां खाते हैं और बाद में फली बनने पर उनमें छेद करके बीज खाते हैं। इस कीट से फसल को 10 से 80 प्रतिशत तक प्रतिवर्ष नुकसान हो जाता है। इसके नियंत्रण के लिए 0.04 प्रतिशत मोनोक्रोटोफास 0.1 प्रतिशत इन्डाक्साकार्ब (अवान्ट) का घोल छिड़कना चाहिए। पहला छिड़काव फूल आने के समय तथा दूसरा फली बनते समय करना चाहिए।

पिंच्छ की शलभ (प्लूम माथ) : यह कीट भारत के अनेक भागों विशेषकर आंध्र प्रदेश, मध्य प्रदेश, तमिलनाडु, महाराष्ट्र और कर्नाटक में अरहर के उत्पादन क्षेत्रों में पाया जाता है। इसकी इल्ली अरहर की फलियों को काटकर या छेदकर हानि पहुंचाती हैं। इस कीट के नियंत्रण के लिए मोनोक्रोटोफास 0.04 प्रतिशत घोल के छिड़काव से किया जा सकता है।

अरहर की फली बेधक मक्खी : उत्तरी भारत में यह कीट अरहर की फसल को काफी हानि पहुंचाता है। इस कीट के द्वारा 20 से 26 प्रतिशत तक अरहर की फसल को प्रतिवर्ष नुकसान होता है। इसके नियंत्रण के लिए मोनोक्रोटोफास (0.04 प्रतिशत घोल) छिड़कने से किया जा सकता है।

गेल्युसिड बीटल और जैसिड : यह कीट अरहर की पत्तियां खाते हैं तथा सामान्य रूप से खेतों में पाए जाते हैं। मौसम के प्रारंभ में इन कीटों से हानि होती है। इन कीटों की रोकथाम फसल के अन्य कीटों की रोकथाम के साथ हो जाती है। अगर फिर भी आवश्यकता हो तो 5 प्रतिशत नीम के अर्क का घोल छिड़काव करें।

फली बग : इस कीट के प्रौढ़ तथा नीम्फस पत्तियों, कलियों, फूलों तथा फलियों के रस को चूसते हैं जिससे फलियां सिकुड़ जाती हैं और सही तरीके से नहीं बन पाती हैं। इसके नियंत्रण के लिए मोनोक्रोटोफास (0.04 प्रतिशत घोल) या डाइमिथोएट (0.03 प्रतिशत घोल) का छिड़काव करना चाहिए।

मारुका : एक अन्यंत हानिकारक कीट है, यह फूल, पत्ती और फली को मिलाकर एक जाल बुन लेता है तथा इसके अंदर बैठकर सभी कुछ चट कर जाता है। इसके बचाव के लिए बिना किसी देरी के 1 मि.ली./ली. की दर से 'एवाट' (इंडाक्साकार्ब) का छिड़काव करें।

रोग प्रबंधन

तना विगलन : इसके रोगग्रस्त पौधे शीघ्रता से सूखकर मर जाते हैं। रोग की बढ़ी हुई अवस्था में जमीन की सतह के पास भूरे रंग के क्षत बन जाते हैं। इस रोग के नियंत्रण के लिए रोगरोधी किस्में उगानी चाहिए। इसके साथ ही फसल ऐसे खेत में बोनी चाहिए जिसमें पानी के निकास का अच्छा प्रबंध हो। बोने से पहले बीज का, रिडोमील एम जेड–72 का 2.5 ग्रा/कि.ग्रा. बीज द्वारा उपचार करना चाहिए।

उक्ठा : रोगी पौधों की पत्तियां पीली पड़ जाती हैं और बाद में पौधा मुरझाकर सूख जाता है। अधिक वर्षों का फसल चक्र अपनाने के साथ खेतों में खरपतवार नियंत्रण बनाए रखने व गर्मी की जुताई करने से भूमि में पड़े रोगजनक नष्ट हो जाते हैं। अरहर का फसल चक्र तम्बाकू के साथ होने से बीमारी का प्रकोप कम हो जाता है। फसल के प्रभावित पौधों को कई वर्ष तक लगातार उखाड़ कर जला देने से भी रोग कम हो जाता है। इस रोग की रोकथाम का सबसे अच्छा एवं सरल उपाय रोगरोधी किस्मों का बोना है। बिहार में एन पी 15 व एन पी 38 किस्में काफी हद तक रोगरोधी पाई गई हैं। सेलेक्शन एन पी डब्ल्यू आर 15 व सेलेक्शन–2 ई–1 में भी यह रोग कम लगता है।

सर्कोस्पोरा पर्ण चित्तियां : रोग की रोकथाम हो सके उसके लिए एक ही खेत में लगातार अरहर नहीं बोनी चाहिए तथा खेत की खरपतवारों से मुक्त रखना चाहिए। इसकी रोकथाम के लिए जिनेब जैसे कवकनाशी (0.3 प्रतिशत) से 10 दिन के अन्तर पर आवश्यकतानुसार दो–तीन छिड़काव करने चाहिए।

वंध्यता मोजैक : इस रोग के पौधे हल्के हरे दिखाई देते हैं तथा स्वस्थ हरे पौधों से बिल्कुल भिन्न होते है। प्रायः रोगी पौधों की पत्तियां आकार में छोटी हो जाती है जिन पर अनियमित आकार के हरे हल्के और साधारण हरे रंग के धब्बे पड़ जाते है। रोगी पौधों में फूल व फली उत्पन्न नहीं होते हैं। यह रोग एक वाइरस द्वारा फैलता है। इस रोगजनक वाइरस का वाहक इरिओफिडमाइट है। इस रोग के नियंत्रण के लिए खेतों में सफाई रखनी चाहिए व खरपतवार आदि उखाड़ देने चाहिए तथा जिस खेत में अरहर बोना है, यदि उसके आसपास अरहर के पुराने या अपने आप उगे पौधे हों, तो उन्हें नई फसल लगाने से पूर्व उखाड़ देना चाहिए। रोग नियंत्रण हेतु बीज को इमिडाक्लोप्रिड–70 डब्ल्यू एस 3.0 ग्रा./कि.ग्रा. से उपचारित करें तथा बुवाई के 30 व 45 दिन पर कोन्फीडोर – 200 एस एल (100 मि.ली. दवा 500 लीटर पानी) का छिड़काव प्रति हेक्टेयर की दर से करना चाहिए।

कटाई एवं मड़ाई

अरहर की कुछ किस्में 5–6 महीने में तथा कुछ किस्में 10 महीनों में पककर तैयार होती हैं। अगेती किस्में नवम्बर–दिसम्बर में और पछेती किस्में मार्च–अप्रैल में काटी जाती हैं। फसल की कटाई परम्परागत कृषि यंत्रों/हंसिया/गंडासे आदि से की जाती है। फसल सूख जाने पर फलियों को काटकर या पीटकर दाने निकाले जाते हैं। यांत्रिक विधि में पूलमेन थ्रेसर का उपयोग किया जाता है।

उपज

अरहर की फसल की पैदावार उगाई गई किस्म तथा उसके प्रबंधन पर निर्भर करती है। सिंचित क्षेत्रों में शुद्ध फसल से 20–25 क्विंटल/हेक्टेयर तक दाने की पैदावार प्राप्त हो जाती है ।

मूंग

जलवायु

मूंग की फसल हर प्रकार के मौसम में उगाई जा सकती है। उत्तर भारत में इसे ग्रीष्म तथा वर्षा ऋतु में उगाते हैं। दक्षिण भारत में इसे रबी में भी उगाते हैं। ऐसे क्षेत्र जहां 60 से 75 सें.मी. वर्षा होती है, मूंग के लिए उपयुक्त होते हैं। फली बनते तथा पकते समय वर्षा होने से दाने सड़ जाते हैं और काफी हानि होती है। उत्तरी भारत में मूंग को वसंत ऋतु (जायद) में भी उगाते हैं। अच्छे अंकुरण एवं समुचित बढ़वार हेतु क्रमशः 25 डिग्री एवं 20 से 40 डिग्री से. तापमान उपयुक्त होता है।

मृदा

मूंग की खेती के लिए दुमट मृदा सबसे अधिक उपयुक्त होती है। इसकी खेती मटियार और बलुई दुमट मृदा में भी की जा सकती है लेकिन उसमें उत्तम जल–निकास का होना आवश्यक है।

फसल–चक्र

मूंग की मिश्रित खेती बाजरा, मक्का, ज्वार, कपास और अरहर के साथ की जाती है। उत्तरी भारत में इसके साथ अपनाये जाने वाले प्रचलित फसल चक्र; मूंग– गेहूं, मूंग–आलू, मक्का–गेहूं–ग्रीष्मकालीन मूंग, धान–गेहूं–ग्रीष्मकालीन मूंग आदि हैं। बहुधा ऐसा देखा गया है कि ग्रीष्मकालीन मूंग की उपज वर्षाकालीन मूंग की अपेक्षा अधिक होती है क्योंकि ग्रीष्मकालीन फसल में सिंचाई के साधन का प्रयोग होने और अधिक वर्षा न होने से पानी की मात्रा संतुलित होती है साथ ही इस मौसम में कीटों तथा रोगों का प्रकोप भी उतना उग्र नहीं होता है।

उन्नत किस्में

पकने में लगने वाले समय के आधार पर मूंग की किस्मों के अगेती, मध्यम एवं पछेती किस्मों में विभाजित किया गया है। पूसा संस्थान द्वारा विकसित मूँग की प्रमुख किस्मों का उल्लेख सारणी 1 में किया गया है। भारत के विभिन्न क्षेत्रों के लिए अनुमोदित मूंग की अन्य किस्में तथा उनकी विशेषताएं यहां पर दी जा रही हैं –

(1) **टाइप 44** : इसका पौधा बौना होता है। तना अर्धविस्तारी और पत्तियां गहरे हरे रंग की होती हैं। फूल पीले होते हैं। बीज गहरे हरे रंग के और मध्यम आकार के होते हैं। फसल पकने में 60–70 दिन का समय लेती है। यह सभी मौसमों में उगाई जा सकती है।

(2) **मूंग एस 8** : पौधा मध्यम ऊंचाई का और सीधे बढ़ने वाला होता है। तना विस्तारी होता है, फूल हल्के पीले रंग के होते हैं। फलियां 6–8 सें.मी. लम्बी, चिकनी व काली होती हैं। एक फली में

सारणी 1. पूसा संस्थान द्वारा विकसित मूँग की प्रमुख किस्में

(क) ग्रीष्म मौसम में बुवाई

किस्म	अनुमोदित वर्ष	अनुमोदित क्षेत्र/ परिस्थिति	उपज (क्विं/है.)	विशेषताएं
पूसा विशाल	2001	उत्तर पश्चिमी मैदानी क्षेत्र (पंजाब, हरियाणा, पश्चिम उत्तर प्रदेश, राजस्थान, जम्मू कश्मीर तथा हिमाचल प्रदेश का मैदानी क्षेत्र)/बसंत/ग्रीष्म मौसम में बुवाई के लिए	12	यह किस्म विषाणु जनित पीली चित्ती रोग की प्रतिरोधी है। यह किस्म एक साथ पकने वाली है जो बसंत के मौसम में 65–70 दिनों में और ग्रीष्म में 60–65 दिनों में पककर तैयार हो जाती है।
पूसा रतना	2005	राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र, दिल्ली/ खरीफ मौसम में बुवाई के लिए	12	यह किस्म एक साथ पकने वाली है जो 65–70 दिनों में पककर तैयार हो जाती है यह किस्म विषाणु जनित पीली चित्ती रोग की सहिष्णु है।
पूसा 0672	अप्रैल 2009 में चिन्हित की गई	उत्तरी पहाड़ी क्षेत्र/ खरीफ मौसम में बुवाई के लिए	9.5–10	यह किस्म मूंग के विषाणु जनित पीली चित्ती रोग व अन्य रोगों की सहिष्णु है। इसका दाना चमकदार हरा, आकर्षक एवं मध्यम आकार का है।

(ख) खरीफ मौसम में बुवाई

पूसा–9531	2001	पंजाब, हरियाणा, पश्चिमी उत्तर प्रदेश, राजस्थान, जम्मू कश्मीर तथा हिमाचल प्रदेश का का मैदानी क्षेत्र	12	यह किस्म 60–65 दिनों में पककर तैयार हो जाती है तथा विषाणु जनित पीली चित्ती रोग एवं कीटों की सहिष्णु है।

10–12 तक हरे चमकदार बीज पाए जाते हैं। फसल तैयार होने में 75–80 दिन लेती है। इसमें पीले मोजैक रोग का प्रकोप कम होता है। यह खरीफ ऋतु में उगाई जा सकती है।

(3) मूंग जवाहर 45 : इसका पौधा लम्बा व सीधा होता है तथा पत्तियां हरी होती हैं। फूल पीले तथा बीज चमकदार व हरे रंग के होते हैं। फसल पकने में 80 दिन का समय लेती है। यह खरीफ के लिए उपयुक्त है।

(4) पी एस 16 : पौधे की लम्बाई 45 सें.मी. तक होती है तथा वह सीधा बढ़ने वाला होता है। पत्तियां पीलापन लिए हुए हरे रंग की होती हैं। फूल पीले तथा बीज चमकदार हरे रंग के होते हैं। फसल तैयार होने से 60–70 दिन का समय लगता है। यह खरीफ तथा ग्रीष्म, दोनों ऋतुओं के लिए ठीक है।

(5) पी एस 10 (कांति) : इसका पौधा भी सीधा होता है। फूल पीले बड़े आकार के धुंधले आकार के होते हैं। फसल 75 दिन में तैयार होती है। इस किस्म कीं फलियां एक साथ पकती हैं, जिसके फलस्वरूप इसकी कटाई एक साथ की जा सकती है। यह खरीफ के लिए उपयुक्त है।

(6) मूंग पूसा बैसाखी : यह किस्म टाइप 44 के चयन से निकाली गई है। इसका पौधा बौना तथा झाड़ीनुमा होता है। पत्तियां हरी होती हैं तथा तने में हल्के गुलाबी रंग के धब्बे होते हैं। फूल भूरा रंग लिए हुए क्रीमी रंग के तथा बीज हरे रंग के मध्यम आकार के होते हैं। पौधे पर प्रकाश की अवधि का प्रभाव नहीं पड़ता। फसल 60 से 70 दिन में तैयार हो जाती है। सभी फलियां लगभग एक साथ पकती हैं जिससे कटाई में सुविधा होती है। यह ग्रीष्म ऋतु के लिए अधिक उपयुक्त है।

(7) पंत मूंग 1 : इसका पौधा सीधा बढ़ने वाला गहरे हरे रंग का होता है। बीज हरे रंग के मध्यम आकार के होते हैं। यह किस्म पीला मोजैक विषाणु एवं सर्कोस्पोरा पर्ण चित्ती रोग के लिए काफी हद तक प्रतिरोधी है। यह किस्म खरीफ में 70 से 75 एवं जायद में 65 से 70 दिन लेती है।

(8) पंत मूंग 2 : इसका पौधा मध्यम ऊंचाई का होता है। पकने के लिए 60 से 65 दिनों की आवश्यकता पड़ती है। इसे खरीफ में उगाना चाहिए। खरीफ में यह 65 से 70 दिन लेती है। यह पीला मोजैक विषाणु रोग के लिए मध्यम प्रतिरोधी है।

(9) पंत मूंग 3 : इसके पौधे सीधे बढ़ने वाले होते हैं। पकने के लिए 75–85 दिनों का समय लेती है। इसे खरीफ में उगाने से अधिक लाभ मिलता है। बीज चमकीले एवं मध्यम आकार के होते हैं। यह 65–70 दिन में पकती है। यह बहुरोग प्रतिरोधी प्रजाति है।

(10) पंत मूंग 4 : इसका पौधा मध्यम ऊंचाई का होता है। यह मूंग तथा उड़द दोनों के संयोग से विकसित की गई है। बीज चमकीले हरे एवं मध्यम आकार के होते है। यह बहुरोग प्रतिरोधी प्रजाति है। इसके पकने की अवधि 65 से 70 दिन है। यह उत्तर–पूर्वी भारत के मैदानी क्षेत्रों में खरीफ मौसम के लिए अनुमोदित की गई है।

(11) पंत मूंग 5 : यह जायद मौसम के लिए उपयुक्त है। इसके दाने चमकीले तथा बड़े आकार (1000 दानों का भार 50–55 ग्रा.) के होते हैं। फलियां गुच्छों में लगती हैं। यह उत्तरी भारत के मैदानी क्षेत्रों के लिए अनुमोदित है। इसकी औसत उपज 15–18 क्विंटल/हेक्टेयर है।

खेत की तैयारी

ग्रीष्मकालीन फसल को बोने के लिए गेहूं को खेत से काट लेने के बाद केवल सिंचाई करके (बिना किसी प्रकार की खेत की तैयारी करके) मूंग बोयी जाती है। परन्तु अच्छी उपज प्राप्त करने के लिए एक बार हैरो चलाकर जुताई करके पाटा फेर कर खेत तैयार करना ठीक रहता है।

बुवाई

वर्षा ऋतु की फसल को मध्य जुलाई से अगस्त के दूसरे सप्ताह तक बोना चाहिए। वसंतकालीन फसल फरवरी के दूसरे पखवाड़े या मार्च में बोनी चाहिए। इसी प्रकार ग्रीष्मकालीन फसल को गेहूं काटने के तुरंत बाद बो देना आवश्यक होता है, क्योंकि बुवाई में एक या दो दिन की भी देरी होने से पैदावार कम हो जाती है। खरीफ की फसल को 30 से 35 सें.मी. की दूरी पर पंक्तियों में बोना चाहिए और पौधे से पौधे की दूरी लगभग 7 से 10 सें.मी. होनी चाहिए। किस्म के अनुसार इसके लिए 12 से 15 कि.ग्रा. बीज प्रति हेक्टेयर लगेगा। बसंत तथा ग्रीष्मकालीन ऋतु की फसल के पौधे की बढ़वार कम होती है। इसलिए 25–30 सें.मी. पंक्ति से पंक्ति की दूरी पर्याप्त है। इसके लिए 20 से 25 कि.ग्रा. बीज प्रति हेक्टेयर लगेगा। बीज को कवकनाशी रसायन जैसे थिरम से उपचारित करके बोना चाहिए। बोने के लिए सीडड्रिल का प्रयोग किया जा सकता है।

पोषक तत्व प्रबंधन

भारत के विभिन्न भागों में किसानों के खेतों पर किए गए परीक्षणां से यह सिद्ध हुआ है कि 15–20 कि.ग्रा./हेक्टेयर नाइट्रोजन देने से मूंग की बढ़वार अच्छी होती है। कम उर्वरक शक्ति वाली भूमि में 40–50 कि.ग्रा. फास्फोरस प्रति हेक्टेयर डालना भी आवश्यक हो जाता है।

जल प्रबंधन

ग्रीष्म व बसंत कालीन मूंग की फसल को 4 से 5 सिंचाइयां देना आवश्यक होता है। प्रथम सिंचाई बुवाई के 20 से 25 दिन बाद व अन्य सिंचाई 12 से 15 दिन के अंतर पर करें। वर्षा ऋतु की फसल की आवश्यकता अनुसार सिंचाई करें। वर्षा ऋतु की मूंग में उचित जल–निकास की व्यवस्था आवश्यक है।

खरपतवार प्रबंधन

बोने के बाद 35–40 दिन के भीतर खरपतवारों की सघनता के अनुसार एक या दो निराई–गुड़ाई पर्याप्त होती है। बुवाई के तुरंत बाद 2 कि ग्रा/हेक्टेयर लासो (सक्रिय अवयव) का 1000 लीटर पानी में घोल बनाकर भूमि पर छिड़क देने से खरपतवारों का काफी समय के लिए नियंत्रण हो जाता है।

कीट प्रबंधन

1. **फफोला भृंग** : यह बहुभक्षी कीट लगभग पूरे देश में मूंग की फसल को हानि पहुंचाता है। इसके वयस्क फूलों को चट कर जाते हैं और उत्पादन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। इसका कीटनाशकों द्वारा नियंत्रण नहीं हो पाता है। रात्रि में प्रकाश पाश का प्रयोग करके इस कीट के प्रजनन को कम किया जा सकता है। इसके अलावा दस्ताने पहनकर कीटों को खेत में एकत्रित किया जा सकता है।

2. **सूंडियां** : मूंग की फसल को नुकसान पहुंचाने वाली सूंडियों में *हेलिकोवर्पा* और तम्बाकू की सूंडी प्रमुख हैं। *हेलिकोवर्पा* की सूंडी फली में छेद कर उसका अंदर का गूदा खा जाती है और तम्बाकू की सूंडी मुख्यतः पत्तियों को बहुत तेजी से खाती है। इस कीट की निगरानी के लिए 5 फेरोमोन ट्रैप प्रति हेक्टेयर लगाएं तथा आवश्यकतानुसार बी टी और एच एन पी वी का छिड़काव करें। कीटनाशक डेल्टामेथ्रिन (1 मि.ली./ली.) का छिड़काव कीटों की संख्या को ध्यान में रखकर करें। तम्बाकू की सूंडियों (छोटी अवस्था) को और उनके अंडों को चुनकर नष्ट कर दें। आवश्यकता होने पर एन पी वी का छिड़काव करें।

रोग प्रबंधन

सर्कोस्पोरा पर्ण–चित्ती : पत्तियों पर प्रायः वृत्ताकार तथा कभी–कभी कोणीय 0.5–4 एम एम (औसत 3–4 मि.मी.) व्यास के विक्षत प्रकट होते हैं। जिसका रंग बैंगनी लाल तथा मध्य भाग भूरा होता है। कभी–कभी रोग ग्रस्त भागों के साथ मिलने पर पत्ती की दो सिराओं के बीच अनियमित आकार का ध ाब्बा बन जाता है। पत्ती की ऊपरी सतह पर धब्बे अधिक स्पष्ट होते हैं। अधिक धब्बे बनने के कारण फलियों का रंग काला पड़ जाता है और रोग की उग्र अवस्था में बीज भी संक्रमित हो जाते हैं। तनों पर बड़े आकार की चित्तियां बन जाती हैं। रोग के लक्षण दिखाई देने पर 0.05 प्रतिशत वाविस्टीन या 0.2 प्रतिशत जिनेब का छिड़काव करना चाहिए। 1000 लीटर घोल एक हेक्टेयर के लिए पर्याप्त होता है तथा इसे 7–10 दिन के अन्तर पर दोहराते हैं। कुल 3–4 छिड़कावों से रोग का अच्छा नियंत्रण होता है। खेत में पड़े अवशेषा को निकालकर जलाने से आरंभिक निवेश द्रव्य की मात्रा कम हो जाती है।

पीला मोजैक : पीली कुर्बरता के रूप में यह रोग मूंग की रोग ग्राही जातियों में अधिक व्यापक होता है। नमी उगती हुई पत्तियों में प्रारंभ से ही कुर्बरता के लक्षण दिखाई देते हैं। जिन पत्तियों में पीली कुर्बरता या पीली ऊतकक्षय कर्बरता के मिले–जुले लक्षण दिखाई देते हैं, उनके आकार छोटे रह जाते हैं। ऐसे पौधों में बहुत कम व छोटी फलियां होती हैं। ऐसी फलियों का बीज सिकुड़ा हुआ और मोटा व छोटा होता है। यह रोग सफेद मक्खी द्वारा फैलता है। इसलिए यह रोगवाहक सफेद मक्खी की रोकथाम से नियंत्रित हो सकता है। खेत में ज्यों ही रोगी पौधे दिखाई दें, डायमेथाक्साम (एक्टाश) या इमिडाक्लोप्रिड (कन्फीडोर) 0.02 प्रतिशत मेटासिस्टाक्स 0.1 प्रतिशत का छिड़काव कर दें। छिड़काव को 15–20 दिन के अन्तर पर दोहरायें और कुल 3–4 छिड़काव करें। छिड़काव के 24 घंटे के बाद रोगी पौधे को उखाड़ कर जला देना चाहिए। प्रति हेक्टेयर 1000 लीटर में बना घोल पर्याप्त होता है। पीला मोजैक रोग ग्रीष्मकालीन तथा बसंतकालीन फसल में कम तथा वर्षा ऋतु में ज्यादा लगता है। बीज उपचार कीटनाशी रसायन क्रुजर या गऊचो 4 ग्रा. प्रति कि.ग्रा. की दर से करें।

मोजैक : रोग का लक्षण अनियमित हल्के हरे क्षेत्र के रूप में पत्तियों पर प्रकट होता है। पत्तियां विरूपित होकर, आकार में छोटी हो जाती हैं और किनारे की ओर मुंह मोड़ लेती हैं। इस रोग की रोकथाम के निम्न उपाय किये जा सकते हैं–

(1) रोगी पौधे से प्राप्त बीज को काम में नहीं लाना चाहिए।

(2) ज्यों ही रोग के लक्षण दिखाई दें, रोगी पौधे को उखाड़ कर जला देना चाहिए।

(3) खेती की सफाई हेतु खरपतवार निकालते रहें तथा कीटों का नियंत्रण करना चाहिए।

कटाई एवं गहाई

वर्षा ऋतु में जब पौधों की अधिकतर फलियां पककर काली हो जाती हैं तो फसल काटी जा सकती है। ग्रीष्म तथा बसंतकालीन फसलों में जब 50 प्रतिशत फलियां पक जाएं, फलियों की पहली तुड़ाई कर लेनी चाहिए। इसके बाद दूसरी बार फलियों के पकने पर कटाई की जा सकती है। फलियों को खेत में सूखी अवस्था में अधिक समय तक छोड़ने से वे चटक जाती हैं और दाने बिखर जाते हैं जिससे उपज की हानि होती है। फलियों से बीज को समय पर निकाल दें।

उपज

वर्षा ऋतु की फसल से प्रति हेक्टेयर 10 क्विंटल पैदावार मिल जाती है। ग्रीष्मकालीन फसल में समुचित प्रबंध द्वारा 10 से 15 क्विंटल तक पैदावार लेना संभव है। साथ ही लगभग 15–20 क्विंटल सूखा चारा भी प्राप्त हो जाता है।

उड़द

जलवायु

उड़द उच्च तापक्रम सहन करने वाली उष्ण जलवायु की फसल है। इसी कारण जिन क्षेत्रों में सिंचाई की सुविधा होती है वहाँ अनेक भागों में उगाया जाता है। इसकी अच्छी वृद्धि और विकास के लिए 25–35^0 सें. तापमान आवश्यक है परन्तु यह 42^0 डिग्री सें. तापमान तक सहन कर लेती है। अधिक जलभराव वाले स्थानों में इसे नहीं उगाना चाहिए।

मृदा

उड़द बलुई मृदा से लेकर गहरी काली मिट्टी (पी एच मान 6.5–7.8) तक में सफलतापूर्वक उगायी जा सकती है। उड़द का अच्छा उत्पादन लेने के लिए खेत का समतल होना और खेत से जल निकास की उचित व्यवस्था का होना अति आवश्यक है।

फसल चक्र

उड़द कम अवधि व कम बढ़वार वाली फसल होने के कारण इसे ऊंची बढ़वार वाली फसलों के साथ उगाया जा सकता है। इसी कारण इसका अन्तः फसल प्रणाली में अच्छा स्थान माना जाता है। कुछ फसलें जिनके साथ उड़द को उगाया जा सकता है –

अरहर + उड़द

बाजरा + उड़द

सूरजमुखी + उड़द

मक्का + उड़द

गन्ना + उड़द

ग्रीष्मकालीन उड़द को अनेक सस्यक्रम प्रणालियों में उगाया जा सकता है। ऐसे क्षेत्र जहां सिंचाई की सुविधा सीमित हो, एकल फसल के रूप में उगाना उत्तम होता है। कुछे एक वर्षीय फसल चक्र जिनके साथ उड़द को सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है, निम्नवत हैं–

धान–गेहू–उड़द

आलू–गेहूं–उड़द

अरहर–गेहूं–उड़द

मक्का–आलू–गेहूं–उड़द

मक्का–उड़द–गेहूं।

उन्नत किस्में

उड़द की प्रमुख उन्नत किस्में विभिन्न प्रान्तों व क्षेत्रों के अनुसार सारणी 1 में दर्शाई गई हैं।

सारणी 1. उड़द की उन्नतशील किस्में

उन्नत किस्में	संस्तुत क्षेत्र	उत्पादन क्षमता (क्विंटल / हेक्टेयर)
टाइप 9, टाइप 19	उड़द उगाने वाले समस्त राज्य	10–15
पन्त उड़द 30	पहाड़ी क्षेत्रों के लिए, साथ ही पीला मोजैक के प्रतिरोधी	10–12
बसंत बहार	उड़द उगाने वाले सभी क्षेत्रों के लिए और पीले विषाणु रोग के प्रतिरोधी	10–13
उत्तरा	पूर्वी मैदानी व उत्तर–पश्चिमी मैदानी क्षेत्रों के लिए तथा विषाणु रोग के प्रति अवरोधी	10–15
पन्त उड़द 40	उड़द उगाने वाले क्षेत्रों तथा अंतःफसलों के साथ उगाने के लिए	10–13
शेखर 2	महाराष्ट्र, हरियाणा, पंजाब	10–14
नरेन्द्र उड़द 1	उड़द उगाने वाले समस्त क्षेत्र	10–12
पन्त उड़द 35	खरीफ व जायद दोनों मौसम में उगाने के लिए उपयुक्त	10–14
एल वी जी 623, एल वी जी 611, वामबान 1, वामबान 2, वामबान 3	दक्षिणी भारत के उड़द उगाने वाले समस्त राज्यों के लिए उपयुक्त	10–14

खेत की तैयारी

खेत की अच्छी तैयारी परिणामस्वरूप अच्छा अंकुरण व फसल में एक समानता के लिए बहुत जरूरी है। भारी मिट्टी की तैयारी में अधिक जुताई की आवश्यकता होती है। सामान्यतः 2–3 जुताई करके खेत में पाटा चलाकर समतल बना लिया जाता है तो खेत बुवाई के योग्य बन जाता है। ध्यान रहे कि जल निकास नाली की व्यवस्था अवश्य हो।

बुवाई

खरीफ की बुवाई का उचित समय मध्य जून से मध्य जुलाई तक माना जाता है। देर से बुवाई करने पर उपज पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। गर्मी की बुवाई का उचित समय मार्च महीने में करें। रबी की बुवाई का उचित समय मध्य अगस्त से मध्य सितम्बर तक अच्छा माना जाता है। इससे उपज भी अच्छी प्राप्त होती है। बुवाई के समय पंक्तियों का अंतर 30 से 45 सें.मी. और पौधे से पौधे का अंतर

5 से 10 सें.मी. सही रहता है। खरीफ की बुवाई के लिए 12 से 15 कि.ग्रा./हेक्टेयर बीज पर्याप्त रहता है। गर्मी की बुवाई के लिए 20 से 25 कि.ग्रा./हेक्टेयर पर्याप्त रहता है। अधिक बीज दर रखने से पौधों की वृद्धि एवं विकास अच्छा नहीं होता है और साथ ही पैदावार पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। बुवाई से पूर्व बीज का उपचार राइजोबियम टीके से और पी एस वी के टीके से करें इससे उपज में बढ़ोतरी होती है।

पोषक तत्व प्रबंधन

उड़द की प्रारंभिक अवस्था में अच्छी वृद्धि और विकास के लिए 15 से 20 कि.ग्रा. नत्रजन/हेक्टेयर बुवाई के समय देना आवश्यक होता है। इसे उड़द की अधिक उपज के लिए नत्रजन के साथ–साथ 40 से 50 कि.ग्रा. फास्फोरस और 30 कि.ग्रा. पोटेशियम/हेक्टेयर का प्रयोग करें।

जल प्रबंधन

सामान्यतः उड़द की अच्छी पैदावार लेने के लिए 4–5 सिंचाइयों की आवश्यकता होती है। सिंचाई क्रांतिक अवस्था पर करें तो बहुत अच्छा रहता है। पुष्पावस्था व फलियों में दाना बनते समय सिंचाई अवश्य करनी चाहिए। ध्यान रखें कि अधिक पानी खेत में खड़ा रहने से जड़ों की ग्रंथियों (नत्रजनधारी) का विकास नहीं होता है और परिणामस्वरूप उपज पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

खरपतवार प्रबंधन

उड़द की फसल को नुकसान करने वाले खरपतवार जैसे सावां, क्रेब, घास, सांठी, मोथा, कनंकआ, जंगली जूट, मुरेल, शतुर्मुर्ग–दुहदी, सैंजी, लटजीरा आदि हैं। समय पर इनकी रोकथाम करना अतिआवश्यक है। इनकी रोकथाम के लिए बुवाई के 25 से 30 दिन के बाद सिंचाई के बाद से निराई व निकाई करके नियंत्रित किया जा सकता है। आवश्यकता पड़ने पर खरपतवारनाशी रसायनों का उपयोग कर सकते हैं। खरपतवारनाशी जैसे एलाक्लोर या पेन्डिमेथालीन 1.0 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर का 400–500 लीटर पानी में घोल बनाकर बुवाई के बाद एवं अंकुरण से पूर्व करना चाहिए।

कीट प्रबंधन

उड़द में सामान्यतः मिट्टी के झींगुर और मूंग के डिम्भक कीट अंकुरण होते समय अधिक नुकसान करते हैं। इनकी रोकथाम के लिए फोरेट 10 प्रतिशत ग्रेन्युल रसायन को 10 कि.ग्रा./हेक्टेयर मात्रा बारीक मिट्टी अथवा रेत में मिलाकर खेत में बुरकाव करें अथवा मोनोक्रोटोफास रसायन की एक मि.ली. मात्रा/लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव कर सकते हैं।

एक अन्य कीट रोमिल गिडार फसल को काफी नुकसान करता है। इसकी रोकथाम के लिए एन्डोसल्फान 35 ई सी की 1–1.25 लीटर मात्रा/हेक्टेयर मोनोक्रोटोफास का छिड़काव कर सकते हैं। इनके अलावा तना मक्खी की रोकथाम के लिए कोर्बोफ्युरान की 25 कि.ग्रा./हेक्टेयर को बुवाई के समय मृदा में मिला देने से इसका नियंत्रण किया जा सकता है।

रोग प्रबंधन

पीला मोजैक : इसकी रोकथाम के लिए बीज उपचार क्रुजर या गऊचो 4 ग्राम प्रति कि.ग्रा. की दर से करें। पर्णीय छिड़काव एक्टारा या कन्फीडोर 0.02 प्रतिशत का बुवाई के 30 दिन उपरांत करें, और रोग अवरोधी किस्मों को उगायें।

पर्ण धब्बा रोग : यह पत्तियों पर धब्बे होने से पहचानी जा सकती है। इसकी रोकथाम के लिए केप्टान अथवा जिनेब 2.5 ग्रा. दवा/लीटर पानी का घोल बनाकर छिड़काव करना चाहिए।

जड़ गलन : पौधा उखाड़ने पर जड़ों में जड़ गलन का लक्षण दिखाई देता है। इसकी रोकथाम के लिए बीज को थिरम अथवा केप्टान 2.5 ग्रा./कि.ग्रा. बीज से उपचारित करें।

एन्थ्रेक्नोज : इसका प्रभाव पत्तियों एवं तने पर देखा जा सकता है। इसके अधिक प्रभाव से पैदावार में भारी कमी आ जाती है। इसकी रोकथाम के लिए थिरम 2–3 ग्रा/कि.ग्रा. बीज अथवा 0.2 प्रतिशत जिनेब का 10 दिन के अंतराल पर 1–2 छिड़काव करने से इसका नियंत्रण सफलतापूर्वक किया जा सकता है।

चूर्ण आसिता रोग : यह उड़द का भयंकर रोग है। सफेद पाउडर पत्तियों पर आ जाता है। बाद में तने पर फैल जाता है जिससे पैदावार में गिरावट आ जाती है। इसकी रोकथाम के लिए कार्बेन्डाजिम अथवा बेनेमिल का छिड़काव करना चाहिए। रसायन की 2 ग्राम मात्रा/लीटर पानी में घोल बनाकर खड़ी फसल में समान रूप से छिड़काव करें।

कटाई एवं गहाई

फसल की कटाई बुवाई के समय और किस्म पर निर्भर होती है। जैसे–जैसे फलियां पकती जाएं उनकी तुड़ाई करते रहें और यदि ऐसी किस्म है कि फलियां एक साथ पक रही हैं तो ऐसी स्थिति में हंसिया से कटाई करें। जब फसल पूर्ण रूप से सूख जाए तब थ्रेशर से गहाई कर सकते हैं। ध्यान रहे कि दाने में 10–12 प्रतिशत तक नमी होनी चाहिए।

उपज

अच्छी प्रकार प्रबंधन की गई फसल से 10–15 क्विंटल प्रति हेक्टेयर तक दाने की उपज आसानी से मिल जाती है।

लोबिया

जलवायु

लोबिया गरम मौसम तथा अर्ध शुष्क क्षेत्रों की फसल है, जहां का तापमान 20^0 से 30^0 से. के बीच रहता है। बीज जमाव के लिए न्यूनतम तापमान 20^0 से. है तथा 32^0 से. से अधिक तापमान पर जड़ों का विकास रूक जाता है। लोबिया के अधिकतम उत्पादन के लिए दिन का तापमान 27^0 से. तथा रात का तापमान 22^0 से. होना चाहिए। यह ठंड के प्रति संवेदनशील है तथा 15 डिग्री से. से कम तापमान उपज पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है। यह 400 से 900 मि.मी. वर्षा वाले क्षेत्रों में सफलतापूर्वक उगाया जाता है। लेकिन लगातार व कई दिनों तक भारी वर्षा से फसल को हानि होती है। पुष्पन के समय लम्बे समय तक आकाश में बादल रहने से लोबिया में रोग व कीट लगते हैं, जिससे उपज घट जाती है।

मृदा

लोबिया की फसल लगभग सभी प्रकार की मृदाओं में अच्छे प्रबंधन के साथ उगाई जा सकती है। यद्यपि लोबिया की फसल मटियार या रेतीली दोमट मृदा में अच्छी होती है, फिर भी लाल, काली और लैटराइटी मृदा में भी उगाया जाता है। इसके लिए मृदा पी एच मान उदासीन होना चाहिए। अत्यधिक लवणीय या क्षारीय मृदा अनुपयुक्त होती है। अच्छे जल निकास एवं प्रचुर रूप से कार्बनिक पदार्थ वाली मृदा इसके लिए विशेष रूप से उपयुक्त होती है।

फसल चक्र

लोबिया की फसल को सामान्य रूप से मिश्रित फसलोत्पादन के अन्तर्गत अरहर, मक्का, ज्वार तथा बाजरा के साथ उगाया जाता है। यद्यपि मिश्रित फसल के रूप में लोबिया की फसल से उत्पादन कम होता है तथापि अन्य फसल के रूप में इससे लाभ पर्याप्त हो जाता है। गर्मी और बसंत काल में इसे सामान्य रूप से अकेली फसल के रूप में उगाया जाता है, लेकिन चारे के लिए इसे मक्का के साथ उगाते हैं जिससे चारे की गुणवत्ता बढ़ जाती है।

लोबिया के प्रचलित फसल चक्र निम्नलिखित हैं –

लोबिया–गेहूं–लोबिया (गर्मी)

लोबिया–जौं–लोबिया (गर्मी)

मक्का–गेहूं–लोबिया (गर्मी)

मटर–गन्ना–लोबिया

लोबिया–आलू

लोबिया–गेहूं

लोबिया–जई

लोबिया–गन्ना

उन्नत किस्में

आवश्यकता के अनुसार लोबिया की विभिन्न प्रकार की किस्में पाई जाती हैं, इनमें से कुछ किस्में एक से अधिक उद्देश्य के लिए उगाई जाती हैं, जैसे चारे व दाने के लिए। दाने व सब्जी के लिए जो किस्में चारे के लिए उगाई जाती हैं उनको हरी खाद वाली फसल के रूप में भी उगाते हैं। बसंत और गर्मी के मौसम के लिए अपेक्षाकृत कम अवधि वाली किस्में उपयुक्त पाई गई हैं, जबकि खरीफ के मौसम के लिए अधिक अवधि वाली किस्में अच्छी होती हैं।

पूसा संस्थान द्वारा विकसित लोबिया की प्रमुख किस्मों का उल्लेख सारणी 1 में किया गया है।

सारणी 1. पूसा संस्थान द्वारा विकसित लोबिया की प्रमुख किस्में

समय पर बुवाई

किस्म	अनुमोदित वर्ष	अनुमोदित क्षेत्र / परिस्थिति	उपज (क्विं / है.)	विशेषताएं
पूसा संपदा (वी. 585)	1999	उत्तरी–पश्चिमी मैदानी क्षेत्र / समय पर बुवाई के लिए	8.6	यह किस्म विषाणु जनित पीली चित्ती रोग की प्रतिरोधी है तथा 100 दिनों में पककर तैयार हो जाती है।
पूसा 578	2005	राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र, दिल्ली / समय पर बुवाई के लिए	12	यह किस्म विषाणु जनित पीली चित्ती रोग की प्रतिरोधी है तथा 90 दिनों में पककर तैयार हो जाती है।

लोबिया की अन्य उल्लेखनीय उन्नत किस्में इस प्रकार हैं –

पूसा फाल्गुनी : यह अत्यधिक अगेती किस्म है। बसंत और गर्मी के लिए यह किस्म सबसे उपयुक्त है। इसको पकने में लगभग 70–75 दिन लगते हैं। दाना सफेद तथा मध्यम आकार का होता है, अतः दाल के लिए ज्यादा अच्छी है। इसकी हरी फलियों से सब्जी बनाई जाती है। यह किस्म मिश्रित खेती के लिए भी उपयुक्त है।

पूसा दो फसली : यह किस्म 80–85 दिन में पक जाती है तथा सभी मौसमों में उगाई जाती है। यह सब्जी के लिए अधिक उगाई जाती है।

पूसा बरसाती : खरीफ के लिए उपयुक्त किस्म है। यह 110–120 दिन में पककर तैयार हो जाती है। यह विशेषतः हरी सब्जी के लिए उगाई जाती है। फलियां बुवाई से 45–50 दिन बाद सब्जी के लायक हो जाती हैं।

अन्य महत्वपूर्ण किस्में : टाइप 2, पूसा रितुराज (एफ एस 68), सी 22, सी 152, सी 13, सी ओ 1, एस 203, पूसा कोमल, फिलीपाइन्स अर्ली, एस 488, सेलेक्शन 2–1, सेलेक्शन 263, आई आई एच आर 16, अर्का गरिमा, बिधान बारबती 1, बिधान बारबती 2, काशी यामल, काशी गौरी, काशी कंचन, काशी उन्नति आदि हैं।

खेत की तैयारी

भूमि की गहरी जुताई से लोबिया की जड़ों का अनुकूल विकास होता है। एक बार खेत जोतकर डिस्क हैरो चलाकर भूमि तैयार की जा सकती है। जब फसल गर्मी या बसंत में उगाई जाती हो तो कम से कम जुताई की जानी चाहिए। खेत की अंतिम तैयारी करते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि भूमि समतल हो जाए तथा उसमें जल निकास अच्छा हो।

बुवाई

उत्तर भारत में लोबिया की फसल मुख्यतः खरीफ में ली जाती है। इसके लिए बरसात की शुरूआत होते ही लोबिया की बुवाई की जानी चाहिए। बुवाई में देरी करने पर उपज कम हो जाती है क्योंकि पुष्पन अवधि घट जाती है। ग्रीष्मकालीन लोबिया की बुवाई के लिए मार्च अन्त से मध्य अप्रैल का समय अनुकूल होता है तथा देरी करने पर उपज कम हो जाती है व मानसून से फसल बरबाद हो जाती है। लोबिया की बुवाई कतार में या छिटकवां विधि से की जा सकती है। इसके लिए देसी हल या सीड ड्रिल का प्रयोग किया जाता है। दाने व सब्जी के लिए उगाई फसल के लिए 20–25 कि.ग्रा. बीज प्रति हेक्टेयर उपयुक्त होते हैं तथा हरी खाद वाली फसल के लिए यह दर 35 से 45 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर तक उपयुक्त पाई जाती है। बीज को बुवाई से पहले राइज़ोबियम कल्चर से उपचारित करने से उपज पर अनुकूल प्रभाव पड़ता है।

बसंत व ग्रीष्म में पौधे से पौधे की दूरी 8–10 सें.मी. व कतार से कतार की दूरी 30 सें.मी. जबकि खरीफ में 45 से 60 सें.मी. दूरी पर बिजाई करने पर अधिकतम उपज प्राप्त होती है।

पोषक तत्व प्रबंधन

दलहनी फसल होने के कारण इसे नत्रजन की आवश्यकता कम पड़ती है। अतः बुवाई के कुछ दिनों बाद तक की नत्रजन आवश्यकता के लिए 15–20 कि.ग्रा. नत्रजन प्रति हेक्टेयर बुवाई के समय देनी चाहिए। फास्फोरस व पोटाश मृदा पोषक तत्व परीक्षण के अनुसार देना चाहिए। फास्फोरस व पोटाश की मात्रा सामान्यतः 50 से 60 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर देने से अच्छी उपज प्राप्त होती है। सभी पोषक तत्व बुवाई से पहले वाली जुताई के समय भूमि में 6–7 सें.मी. गहराई में देने से अधिक उपज प्राप्त होती है। इसमें सामान्यतः सूक्ष्म तत्व की आवश्यकता नहीं पड़ती, फिर भी कम उपजाऊ मृदा में मृदा परीक्षण के आधार पर सूक्ष्म तत्व देने से उपज बढ़ती है।

जल प्रबंधन

खरीफ की फसल में सिंचाई की ज्यादा आवश्यकता नहीं पड़ती फिर भी लंबे समय तक सुखा पड़ने पर सिंचाई करनी चाहिए। लोबिया में पुष्पन व फलियों के भरने के समय अगर नमी में कमी आती है तो उपज में भारी कमी आती है। अतः सूखे के समय पुष्पन व फलियां भरने के समय मृदा में नमी की मात्रा कम न होने दें। बसंत व गर्मी की फसल में 10 से 15 दिन के अन्तराल में सिंचाई देने से अच्छी उपज मिलती है। बसंत व गर्मी की फसल के लिए 5 से 7 सिंचाई की आवश्यकता पड़ती है। सिंचाई की संख्या मृदा, किस्म, तापमान व किस उद्देश्य के लिए फसल ली जा रही है, पर निर्भर करती है। भारी व ज्यादा वर्षा वाले क्षेत्र में जल निकास का अच्छा प्रबंधन करने से उपज में वृद्धि पाई जाती है।

खरपतवार प्रबंधन

अच्छी उपज प्राप्त करने के लिए फसल को शुरूआत के 25 से 30 दिन तक खरतपवार मुक्त रखना आवश्यक है। इसके लिए कम से कम दो बार निराई–गुड़ाई करनी चाहिए। अगर हाथ से खरपतवार नियंत्रण नहीं हो पाए तो फ्लुक्लोरेलीन 1 कि.ग्रा. सक्रिय तत्व प्रति हेक्टेयर 800–1000 लीटर पानी के साथ बीजाई से पहले देने से अच्छा खरपतवार नियंत्रण होता है।

रोग प्रबंधन

जीवाणु झुलसा : रोग के प्रकोप की प्रारंभिक दशा में बड़े पैमाने पर नवजात पौधों की मृत्यु हो जाती है। यह मध्य वर्षा के मौसम में होता है। रोग के लक्षण सर्वप्रथम पत्तियों पर छोटे–छोटे हरे रंग के धब्बे के रूप में प्रकट होता है। प्रभावित पत्तियां जल्दी से गिर जाती हैं। इसकी रोकथाम के लिए रोग रोधी किस्मों को उगाएं, रोगरहित बीज का प्रयोग करें तथा 0.2 प्रतिशत का ब्लाईटाक्स का छिड़काव करें।

लोबिया मोजैक : यह बीमारी सफेद मक्खी द्वारा संचारित होती है। संक्रमित पौधों की पत्तियां पीली व पत्तियों का आकार विकृत हो जाता है। इसकी रोकथाम के लिए स्वस्थ व रोगरहित बीज का उपयोग करें; सफेद मक्खी को रोकने के लिए 0.1 प्रतिशत मेटासिस्टॉक्स या डाइमेथोएट का छिड़काव 10 दिन के अन्तराल पर करें।

चूर्णिल आसिता : रोग से पौधों की पत्तियों, तनों, शाखाएं व फलियों पर सफेद रंग के कवक बीजाणुओं का चूर्ण दिखाई देता है। रोग की उग्र अवस्था में पत्तियां पीली पड़कर गिर जाती हैं। इसकी रोकथाम के लिए रोग सहनशील या अवरोधी किस्मों का चुनाव किया जाए एवं पेन्कानोजोल 0.25 ग्राम या ट्राइडेमार्फ की 1 मि.ली. मात्रा या डिनोकेप की 1 मि.ली. मात्रा को प्रति लीटर की दर से पानी में घोलकर 5–7 दिन के अंतराल पर छिड़काव किया जाए।

कीट प्रबंधन

रोमिल सूँड़ी : यह लोबिया का प्रमुख कीट है। यह फसल को भारी नुकसान पहुंचाता है। यह नवजात पौधे को काट देता है व हरी पत्तियों को खा जाता है। इस कारण कभी–कभी दोबारा बुवाई करनी

पड़ती है। इसकी रोकथाम के लिए अण्डा व लारवों को इकट्ठा करके जला दें; जवान कैटरपिलर को मारने के लिए 25 से 30 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर की दर से 2 प्रतिशत मिथाइल पेराथियान पाउडर बुरकाव करें।

लीफ होपर, जैसिड, एफिड : ये कीट पौध के रस को चूसकर उसे पीला व कमजोर कर देते हैं। इनकी रोकथाम के लिए प्रारंभिक अवस्था में डाईमेथोएट 30 ई सी या मिथाइल डिमेटान 30 ई सी की 2 मि.ली. प्रति लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें। जब फसल में फलियां आ जाती हैं उस अवस्था में इसका प्रकोप होने पर फलियों की तुड़ाई के बाद एन्डोसल्फान 35 ई सी की 2 मि.ली. प्रति लीटर की दर से पानी में घोलकर छिड़काव किया जाए।

कटाई एवं गहराई

लोबिया के दाने की फसल, उस समय काटी जाती है जब 90 प्रतिशत फलियां पक गई हों। कटाई में देरी करने से उपज में हानि होती है। यदि वर्षा होने की आशंका हो तो पहले ही फलियां तोड़ लेनी चाहिए। चारे तथा हरी खाद वाली फसल को दाना भरने की अवस्था में काटना लाभकारी होता है। हरी फलियों के उपयोग के लिए उगाई फसल की फलियां 45 से 90 दिन तक तोड़ सकते हैं। इसके बाद यह फलियां सब्जी के लिए उपयुक्त नहीं रहती, क्योंकि फलियों में दाना पक जाता है तथा फलियां रेशा युक्त हो जाती हैं और इनसे सब्जी नहीं बन पाती है।

फसल की गहाई दो–तीन दिन तक कटी हुई फसल को सुखाकर करनी चाहिए। इसकी गहाई ट्रैक्टर या बैलों से भी की जा सकती है लेकिन गहाई सामान्यतः हाथ से की जाती है। गहाई–मड़ाई करते समय ध्यान रखना चाहिए कि दाना टूटने न पाए। इसके लिए गहाई से पूर्व फसल को अच्छी तरह धूप में सुखा लेना चाहिए।

उपज

अच्छी तरह उगाई फसल से लगभग 12 से 15 क्विंटल दाना व 50–60 क्विंटल भूसा प्राप्त हो जाता है। अगर फसल चारे के लिए उगाई गई हो तो 250 से 350 क्विंटल तक हरा चारा प्रति हेक्टेयर तक प्राप्त किया जाता है। सब्जी वाली फसल से 75 से 100 क्विंटल तक हरी फलियां प्रति हेक्टेयर प्राप्त हो जाती हैं।

मूंगफली

जलवायु

अर्ध–उष्ण जलवायु मूंगफली के लिए अधिक उपयुक्त होती है। सूर्य की अधिक रोशनी तथा उच्च तापमान इसकी बढ़वार तथा उपज के लिए अनुकूल हैं। फसल की अच्छी उपज के लिए 25–30^0 से. तापमान और 500 से 1000 मि.मी. वर्षा को उत्तम पाया गया है। मूंगफली दिवस निरपेक्ष फसल है जिसके कारण इसकी खेती वर्ष भर की जा सकती है।

मृदा

मूंगफली को हल्की से लेकर भारी मृदाओं में सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है लेकिन बलुई दोमट मिट्टी जिसमें जल निकास अच्छा हो और प्रचुर मात्रा में कैल्सियम और जीवांश मौजूद हों, मूंगफली के लिए सबसे उपयुक्त रहती है। मूंगफली के लिए हल्की अम्लीय भूमि जिसका पी एच मान 6.0 से 6.5 के बीच हो, उपयुक्त होती हैं। जिन भूमियों में ऊसर और लवण की समस्या हो या अधिक अम्लीय हो, मूंगफली को बढ़ावा नहीं देना चाहिए।

खेत की तैयारी

खेत की जुताई की संख्या, मृदा की किस्म, फसल चक्र, मृदा में नमी की मात्रा तथा प्रयोग में आने वाले यंत्र आदि पर निर्भर करती है। प्रायः पहली जुताई मिट्टी पलटने वाले हल से करने के बाद 3–4 जुताइयां कल्टीवेटर या देशी हल से करके मिट्टी को भुरभुरी बना लेना चाहिए। खेत में नमी को संचित रखने के लिए हर जुताई के बाद पाटा लगाना जरूरी है।

फसल चक्र एवं प्रणाली

उत्तरी भारत में मूंगफली के बाद मुख्यतः गेहूं और दालों की खेती की जाती है, जबकि देश के दक्षिणी राज्यों में ज्वार और सूरजमुखी, फसल चक्र की प्रमुख फसलें हैं। धान–मूंगफली–मूंग, धान–मूंगफली–धान एवं धान–मूंगफली–बाजरा फसल चक्रों के तहत भी क्षेत्रफल में बढ़ोत्तरी हो रही है जिससे किसानों को अधिक उत्पादकता तथा आय प्राप्त हो रही है। मध्य भारत में मूंगफली–कपास, मूंगफली–ज्वार और मूंगफली–अरहर फसल चक्र प्रचलित हैं। आंध्र प्रदेश, तमिलनाडु, केरल, उड़ीसा तथा पश्चिम बंगाल के तटीय भागों में धान–मूंगफली फसल चक्र के तहत क्षेत्रफल में बढ़ोत्तरी हो रही है। जायद में मूंगफली और सूरजमुखी की 4:2 या 3:1 पंक्तियों के अनुपात में खेती करके 25–30 प्रतिशत अधिक उपज ले सकते हैं। इसी तरह, खरीफ में मूंगफली और अरहर का अंतःफसलीकरण 3:1 पंक्तियों के अनुपात में सफल और अधिक उपजाऊ पाया गया है। बारानी क्षेत्रों में मूंगफली+अरहर

(6:1), मूंगफली+बाजरा (6:1), मूंगफली+ज्वार (4:1 या 6:2), मूंगफली+कपास (3:1 या 5:1), मूंगफली+अरण्डी (5:1) तथा मूंगफली+तिल (4:1) की अर्न्तफसलीय खेती को अधिक लाभकारी पाया गया है।

उन्नत किस्में

उपज बढ़ाने में किस्मों का विशिष्ट योगदान होता है। उन्नत किस्मों को अपनाने से स्थानीय किस्मों की तुलना में मूंगफली की उपज में 15–20 प्रतिशत की वृद्धि हो जाती है। स्थान विशेष के लिए सुझाई गई किस्मों का विवरण सारणी 1 में दिया गया है।

सारणी 1. विभिन्न प्रांतों के लिए मूँगफली की संस्तुत किस्में

आंध्र प्रदेश	:	आई सी जी एस 11, आई सी जी एस 44, कादिरी 3, जे एल 24, गिरनार 1, तिरुपति 3, तिरुपति 4, कादिरी 4, के 134 आदि।
तमिलनाडु	:	वी आर आई 1, वी आर आई 2, वी आर आई 3, आई सी जी एस 44, जे एल 24, टी एम बी 2, टी एम 7, टी एम 12, वी आर आई 4, वी आर आई 5, डी एस आर 1, आई सी जी वी 86590 आदि।
गुजरात	:	जी जी 3, जी जी 6, जी जी 12, वी आर आई 2, जी जी 11, जी जी 20, आई सी जी एस 44, गिरनार 1, जे 11, जी ए यू जी 1, आई सी सी एस 37, सोमनाथ, कौशल आदि।
कर्नाटक	:	एम 206, आई सी जी एस 11, के आर जी 1, गिरनार 1, टी एम वी 2, कौशल आदि।
महाराष्ट्र	:	टी ए जी 24, टी ए जी 26, आई सी जी एस 11, गिरनार 1, करद 4–11, आई सी जी एस 37, कोनकन, गौरव, जे एल 24, कादिरी 4, प्रगति जे एल 220, एल जी एन 2 आदि।
मध्य प्रदेश	:	ज्योति, गंगापुरी, जवाहर, आई सी जी एस 11, कौशल आदि।
राजस्थान	:	मुक्ता, प्रकाश, चित्रा, बी ए यू 13, आर जी 141, आर जी 144 आदि।
उत्तरी राज्य	:	पंजाब मूंगफली नं.1, एस जी 44, एस जी 84, आई सी जी एस 37, आई सी जी एस 1, मुक्ता, प्रकाश, चित्रा, वी ए यू 13, एच एन जी 10, एम एच 4, एम 335, डी आर जी 17, सी एस एम जी 84–1 (अम्बर), एम ए 16, एम 522 आदि।

बुवाई

मूंगफली की गुच्छेदार किस्मों में बीज की उचित मात्रा 100 से 125 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर है जबकि मध्यम और अधिक फैलने वाली किस्मों में क्रमशः 80 से 100 और 60 से 80 कि.ग्रा. बीज प्रति हेक्टेयर प्रयोग करें। बुवाई से पूर्व बीज को 2 या 3 ग्राम थिरम या कार्बेन्डाजिम प्रति कि.ग्रा. बीज की दर से मिलाकर उपचार करें। इस उपचार के 5–6 घंटे बाद, बीज को एक विशिष्ट प्रकार के उपयुक्त राइजोबियम कल्चर से उपचारित करें। उपचार हेतु एक टिन के चौड़े बर्तन में 1/2 लीटर पानी लें व उसमें 50 ग्राम गुड़ मिलाकर हल्का सा उबालें और एकदम ठंडा कर लें। फिर इस घोल में 200–250 ग्राम राइजोबियम कल्चर मिलाएं। इस तैयार घोल के मिश्रण को 10 कि.ग्रा. बीज के ऊपर समान रूप से छिड़क कर हल्के हाथ से मिलाएं जिससे बीज के ऊपर हल्की परत बन जाए। उपचार के बाद बीज को छाया में सुखायें एवं शीघ्र ही बुवाई के लिए उपयोग करें।

रबी/जायद मूंगफली की बुवाई के समय खेत की उपरी 10 सें.मी. सतह का तापमान 18^0 से. से कम नहीं होना चाहिए। उत्तरी क्षेत्र में जहां जायद मूंगफली की काश्त की जाती है, फरवरी–मार्च में यह अवस्था आती है। महाराष्ट्र, आंध्र प्रदेश, तमिलनाडु व अन्य राज्यों में नवम्बर से जनवरी तक रबी या जायद मौसम की मूंगफली की बुवाई के लिए उचित तापमान उपलब्ध होता है। खरीफ मौसम की फसल की बुवाई का उचित समय जून का दूसरा पखवाड़ा है। असिंचित क्षेत्रों में जहां बुवाई वर्षा के बाद की जाती है, जुलाई के पहले पखवाड़े में बुवाई के काम को पूरा कर लें। किस्मों और मौसम के अनुसार खेत में पौधों की संख्या में अंतर रखा जाता है। गुच्छेदार किस्मों में पंक्ति से पंक्ति की दूरी 30 सें.मी. और पौधे से पौधे की दूरी 10 सें.मी. रखें। फैलने वाली किस्मों में पंक्ति से पंक्ति की दूरी 45 से 60 सें.मी. और पौधे से पौधे की दूरी 10–15 सें.मी. रखें। रबी/जायद मौसम में प्रति इकाई क्षेत्र में खरीफ मौसम की तुलना में पौधों की अधिक संख्या रखें। मूंगफली की बुवाई सीड ड्रिल द्वारा करनी उपयोगी रहती है क्योंकि कतार से कतार और बीज से बीज की दूरी संस्तुति अनुसार आसानी से कायम की जा सकती है और इच्छित पौधों की संख्या प्राप्त होती है। यदि संभव हो मूंगफली की बुवाई मेंड़ों पर करें। बीज की बुवाई 4–6 सें.मी. की गहराई पर करने से अच्छा अंकुरण प्रतिशत मिलता है।

पोषक तत्व प्रबंधन

किसी भी फसल में मिट्टी परीक्षण के आधार पर उर्वरकों का प्रयोग करना उचित होगा। मिट्टी परीक्षण के अभाव में रासायनिक उर्वरकों के उपयोग के साथ–साथ 5 से 10 टन प्रति हेक्टेयर गोबर की खाद का उपयोग करें। नाइट्रोजन की जरूरत का अधिकांश भाग नाइट्रोजन यौगिकीकरण क्रिया से पूरा हो जाता है। अतः आवश्यक है कि बीज को बोने से पहले उपयुक्त जीवाणु खाद का टीका लगाएं। जीवाणु खाद का टीका विश्वसनीय स्थानों से ही खरीदें। बुवाई से 8–10 घंटे पहले जीवाणु खाद से बीजोपचार करें और उपचारित बीजों को छाया में सुखाकर बुवाई के लिए प्रयोग करें। नाइट्रोजन यौगिकीकरण क्रिया के शुरू होने से पहले की मांग की पूर्ति के लिए 20 से 30 कि.ग्रा. नाइट्रोजन का प्रति हेक्टेयर प्रयोग करें। फॉस्फोरस और पोटाश की मांग की पूर्ति के लिए 40–60 कि.ग्रा. फॉस्फोरस और 30–40 कि.ग्रा. पोटाश प्रति हेक्टेयर का प्रयोग करें। मुख्यता तत्वों के अतिरिक्त गंधक और कैल्शियम का मूंगफली की उपज और गुणवत्ता पर महत्वपूर्ण प्रभाव देखा गया है। इन दोनों तत्वों की मांग की पूर्ति के लिए 200–400 कि.ग्रा. जिप्सम प्रति हेक्टेयर की दर से प्रयोग करें। नाइट्रोजन, फॉस्फोरस और पोटाश की पूरी मात्रा तथा जिप्सम की आधी मात्रा बुवाई के समय मिट्टी में अच्छी तरह मिला दें। जिप्सम की शेष आधी मात्रा को पुष्पावस्था के समय 5 सें.मी. की गहराई पर पौधे के पास दिया जाना चाहिए। बारानी क्षेत्रों में 15–20 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 30–40 कि.ग्रा. फॉस्फोरस और 20–25 कि.ग्रा. पोटाश/है. की दर से डालें। पौधों की बढ़वार यदि कम हो और इसके साथ–साथ जड़ों में कारगर ग्रंथियों की संख्या कम हो, उस अवस्था में अच्छी पैदावार लेने के लिए बुवाई के 30–40 दिन बाद 20–25 कि.ग्रा. नाइट्रोजन का प्रयोग करें। अम्लीय मिट्टी में 1.5–2.0 टन चूने का प्रयोग करने से मूंगफली की पैदावार में आशातीत बढ़ोत्तरी की जा सकती है। सूक्ष्म तत्वों में जस्ते और बोरॉन का प्रयोग करें। जस्ते की कमी की पूर्ति हेतु 25 कि.ग्रा. जिंक सल्फेट का प्रति हेक्टेयर प्रयोग करें। बोरॉन की कमी की पूर्ति हेतु 2 कि.ग्रा. बोरेक्स प्रति हेक्टेयर का प्रयोग करें।

खरपतवार प्रबंधन

मूंगफली की कम उत्पादकता के प्रमुख कारणों में से खरपतवारों का प्रकोप प्रमुख है। खरपतवारों का सही नियंत्रण न करने पर फसल की उपज में 30–50 प्रतिशत तक कमी आ जाती है। मूंगफली फसल के प्रमुख खरपतवार हैं : दूब घास, माधना, संवाक, मकरा, कौन मक्की, मोथा/डिल्ला, गुम्मा, हजारदाना इत्यादि। अधिक पैदावार के लिए मूंगफली के खेत को 25 से 45 दिन की अवधि तक खरतपवारों से मुक्त रखना चाहिए। इसके लिए कम से कम दो बार निराई–गुड़ाई, पहली 20–25 दिन और दूसरी 40–45 दिन पर की जानी चाहिए। श्रमिकों की समस्या होने पर एलाक्लोर (50 प्रतिशत ई सी) 1.5–2.0 कि.ग्रा. सक्रिय तत्व या 3–4 कि.ग्रा. उत्पाद/हेक्टेयर या पेन्डीमेथालीन (30 प्रतिशत ई सी) 1 कि.ग्रा. सक्रिय तत्व या 3 कि.ग्रा. उत्पाद प्रति हेक्टेयर खरपतवारनाशी का बुवाई के पश्चात दूसरे दिन 700–800 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें। फसल की बुवाई के पूर्व फ्लूक्लोरेलिन 1 कि.ग्रा. सक्रिय तत्व/है. की दर से छिड़काव करके मिट्टी में मिलाने से भी खरपतवारों को नियंत्रित किया जा सकता है। रसायन का छिड़काव करने के बाद 30–40 दिन पर एक निराई करने से अधिक उपज मिलती है।

जल प्रबंधन

खरीफ मौसम की फसल प्रायः वर्षा पर निर्भर करती है। जिन क्षेत्रों में सिंचाई की सुविधा उपलब्ध हो वहां पानी की कमी होने पर फूल आने, नस्से बैठते समय, फूल बनते समय और दाना बनते समय फसल की सिंचाई अवश्य करें। मूंगफली की रबी/जायद मौसम की फसल में 10–15 दिन के अन्तराल पर फसल की सिंचाई करें। फसल की बुवाई भी पलेवा करने के बाद करें। जहां पानी की कमी के कारण फसलों की उपज में भारी कमी आती है वहीं अधिक पानी अधिक देर तक खेत में जमा रहने से भी फसलों को भारी नुकसान पहुंचता है। पानी की अधिकता के कारण जड़ें मर जाती हैं और फसल में पोषक तत्वों की भी कमी हो जाती है। अतः जहां पर अधिक पानी एकत्रित होने की संभावना हो, वहां निकासी का उचित प्रबंध करें।

कीट एवं रोग प्रबंधन

खरीफ में उगाई जाने वाली फसल में रबी एवं जायद काल की अपेक्षा तापमान एवं आर्द्रता की अधिकता के कारण कीट एवं रोगों का प्रकोप अधिक होता है। मूंगफली के कीटों में, सफेद गिडार एवं दीमक का प्रकोप अधिक होता है।

सफेद गिडार : इस कीट की गिडारें पौधों की जड़ें खाकर पूरे पौधे को सुखा देती हैं। गिडार पीलापन लिए हुए सफेद रंग की होती हैं जिनका सिर भूरा कत्थई या लाल रंग का होता है। यह कीट प्रथम वर्षा के बाद आसपास के पेड़ों पर आते हैं और अंडे देने के समय खेतों में आ जाते हैं। कीट के प्रौढ़ को पेड़ों पर ही नष्ट कर देना चाहिए ताकि वे खेत में अण्डे न दे सकें। इसके लिए कार्बेरिल 50 डब्ल्यू पी 4 ग्रा./ली. या मोनोक्रोटोफास 36 डब्ल्यू एस सी 1.5 मि.ली./ली. या क्लोरोपाइरीफॉस 20 ई सी 1.5 मि.ली./ली. का छिड़काव करें। बुवाई के 3–4 घंटे पूर्व क्लोरोपाइरीफॉस 20 ई.सी., 25 मि.ली.

प्रति कि.ग्रा. बीज की दर से बीज को उपचारित करके बुवाई करें। मूंगफली उगाए जाने वाले जिन क्षेत्रों में सफेद लट की समस्या हो वहां बुवाई से पहले फोरेट 10 जी 10 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर या कार्बोफ्युरॉन 3 जी 30 कि.ग्रा./हेक्टेयर की दर से खेत में डालें। खड़ी फसल में प्रकोप होने पर क्लोरपाइरीफॉस 20 ई सी रसायन की 3–4 लीटर मात्रा प्रति हेक्टेयर की दर से प्रयोग करें।

दीमक : यह सूखे की स्थिति में जड़ों तथा फलियों को काटती हैं। जड़ काटने से पौधे सूख जाते हैं। फली के अंदर गिरी के स्थान पर मिट्टी भर जाती है। दीमक का प्रकोप होने पर क्लोरोपाइरीफॉस 20 ई सी रसायन की 3–4 लीटर मात्रा प्रति हेक्टेयर की दर से प्रयोग करें।

इन दोनों कीटों के अतिरिक्त पत्ती के काटने वाली सूंडी, पत्तों का रस चूसने वाले कीटों तथा पत्तों में सुरंग करने वाले कीटों का भी प्रकोप होता है। इन कीटों की रोकथाम के लिए एण्डोसल्फान 35 ई सी 1.5 मि.ली./ली. घोल बनाकर छिड़काव करें।

टिक्का रोग (पत्रदाग)

मूंगफली के रोगों में पत्रदाग, गेरूआ, वड नेक्रोसिस, विषाणु तथा चारकोल रॉट प्रमुख हैं। मूंगफली में टिक्का प्रमुख रोग है। इस रोग के कारण पत्तियों की ऊपरी सतह पर छोटे–छोटे गोल आकार के भूरे धब्बे दिखाई देते हैं। अनुकूल अवस्था में धब्बों के आकार तथा संख्या में वृद्धि होती है। अधिक प्रकोप होने पर तने और पुष्प शाखाओं पर भी धब्बे बन जाते हैं। इस रोग की रोकथाम के लिए डाइथेन एम–45 या कवच का 0.2 प्रतिशत घोल बनाकर 2–3 छिड़काव करें। इसके अतिरिक्त फसल की खुदाई के पश्चात उसके सभी भागों को नष्ट कर दें, जिसमें अगले वर्ष के लिए फफूंद जीवित रहता है। पत्रदाग के प्रति अवरोधी या सहनशील किस्मों का जैसे कि आई सी जी एस 37, आई सी जी एस 76, एम 335, एम ए 16, डी आर जी 17 इत्यादि का प्रयोग करें।

बड नेक्रोसिस (विषाणु रोग) : यह बीमारी विषाणु के कारण होती है। इस बीमारी के कारण शीर्ष कलियां सूख जाती हैं और पौधों की बढ़वार रुक जाती है। बीमार पौधों में नई पत्तियां छोटी बनती हैं और गुच्छे में निकलती हैं। प्रायः अंत तक पौधा हरा बना रहता है। फल–फूल नहीं बनते हैं। जून के चौथे सप्ताह से पूर्व फसल की बुवाई न करें। विषाणु रोग वाहक (थ्रिप्स) कीट के द्वारा बीमार पौधे से निरोग पौधे तक फैलता है। इस कीट की रोकथाम के लिए फास्फोमिडान 85 प्रतिशत 250 मि.ली. या डाइमिथोएट 30 ई सी एक लीटर/हेक्टेयर की दर से छिड़काव करें। रोगरोधी जातियां जैसे आई सी जी एस 3, आई सी जी एस 37, आई सी जी एस 44, जी जी 7 और डी आर जी 17 का प्रयोग करें।

चारकोल रॉट : नमी की कमी तथा तापमान अधिक होने पर यह बीमारी जड़ों में लगती है। जड़ें भूरी होने लगती हैं और पौधा सूख जाता है। इसकी रोकथाम हेतु बीज शोधन करें। खेत में नमी बनाए रखें। लम्बा फसल चक्र अपनाएं।

मूंगफली का गेरूआ रोग (रस्ट) : इस रोग के लक्षण सर्वप्रथम पत्तियों की निचली सतह पर नारंगी–लाल फुंसियों के रुप में प्रदर्शित होते हैं जो बाद में गहरे भूरे रंग की हो जाती है। पत्ती के उपरी भाग में भूरे रंग के धब्बे दिखाई देते हैं। ये फुंसियां पत्ती के डंठल, तना, पुष्प तन्तु आदि में भी

बनती हैं। इस रोग के कारण पत्ती सूखकर गिर जाती है। रोग की रोकथाम के लिए बीज उपचार करें, रोग ग्रसित पौधों को नष्ट कर दें, डाइथेन एम–45 या टिल्ट (प्रोपीकोनाजोल) का 0.2 प्रतिशत घोल बनाकर छिड़काव करें तथा रोग प्रतिरोधी किस्मों जैसे कि आई सी जी एस 5, डी आर जी 17, आई एस एम जी 84–1, वी आर आई, जी जी 7 इत्यादि को उगाएं।

कटाई और रख रखाव

मूंगफली में जब पुरानी पत्तियां पीली पड़कर झड़ने लगें, फली का छिलका कठोर हो जाए, फली के अन्दर बीज के ऊपर की परत गहरे गुलाबी या लाल रंग की हो जाए और बीज भी कठोर हो जाए तो मूंगफली की कटाई कर लेनी चाहिए। पकी फसल पर वर्षा होने से फलियों में ही बीज के उगने का अंदेशा रहता है, इसलिए कटाई समयानुसार सावधानी से करनी चाहिए। कटाई के बाद पौधों को सुखाएं और बाद में फलियां अलग करें। फलियों को अलग करने के बाद फिर से सुखाएं ताकि उनमें नमी की मात्रा 8 प्रतिशत रह जाए। फसल की कटाई में देरी होने से फसल का उपज और गुणवत्ता दोनों पर प्रभाव पड़ता है। पकने के बाद जब फली अधिक देर के लिए जमीन में पड़ी रहें तो उसमें कीटों और रोगों का प्रकोप बढ़ जाता है, जिससे उपज में काफी कमी आ जाती है। खुदाई से पहले अगर जमीन सूखी है, तो खेत की सिंचाई कर लें। सिंचाई करने से जमीन नरम पड़ जाती है जिससे खुदाई करने में आसानी रहती है। खुदाई के बाद फलियों को अच्छी तरह साफ कर लें। अगर हो सके तो फलियों को आकार के हिसाब से वर्गीकरण कर लें जिससे मण्डी में उत्पाद के अच्छे दाम मिल सकें।

उपज

उपरोक्त तकनीकें अपनाकर मूंगफली की खरीफ की फसल से 18–20 क्विंटल और रबी/जायद की फसल से 20–25 क्विंटल प्रति हेक्टेयर तक उपज प्राप्त की जा सकती है।

सोयाबीन

जलवायु

सोयाबीन की अच्छी वृद्धि एवं उपज के लिए गर्म एवं नम जलवायु की आवश्यकता होती है। सोयाबीन के बीजों के अंकुरित होने के लिए लगभग 25^0 से. तथा फसल की बढोत्तरी के लिए लगभग $25–30^0$ से. तापमान का आवश्यकता होती है। सोयाबीन की अच्छी फसल के लिए वार्षिक वर्षा 60–70 सें.मी. होनी चाहिए।

मृदा

सोयाबीन की सफल खेती के लिए उपजाऊ, अच्छे जल निकासी वाली, नमकरहित, मध्यम से भारी दोमट मिट्टी की आवश्यकता होती है।

फसल चक्र

सोयाबीन की खेती निम्नलिखित फसल चक्रों में की जा सकती है –

सोयाबीन – गेहूँ, सोयाबीन – चना, सोयाबीन – आलू, सोयाबीन – सरसों, सोयाबीन – अलसी, सोयाबीन – कुसुम आदि।

इन फसल चक्रों के अलावा सोयाबीन की खेती निम्नलिखित अर्न्त फसली पद्धति में भी की जा सकती है –

सोयाबीन + अरहर, सोयाबीन + ज्वार, सोयाबीन + मूंगफली, सोयाबीन + मक्का, सोयाबीन + बाजरा, सोयाबीन + कपास आदि।

उन्नत किस्में

सोयाबीन की विभिन्न क्षेत्रों के लिए उन्नत किस्में सारणी 1 में दी गई हैं।

सारणी 1. विभिन्न क्षेत्रों के लिए सोयाबीन की प्रमुख किस्में

	क्षेत्र / राज्य	प्रमुख किस्में
1	उत्तर पहाड़ी क्षेत्र – हिमाचल प्रदेश, उत्तराखंड	शिलाजीत, पूसा 16, वी एल सोया 2, वी एल सोया 47, हरा सोया, पालम सोया, पंजाब 1, पी एस 1241, पी एस 1092, पी एस 1347, वी एल एस 59, वी एल एस 63

2	उत्तर मैदानी क्षेत्र – पंजाब, हरियाणा, दिल्ली, उत्तर प्रदेश, बिहार	पी के 416, पूसा 16, पी एस 564, एस एल 295, एस एल 525, पंजाब 1, पी एस 1024, पी एस 1042, डी एस 9712, पी एस 1024, डी एस 9814, पी एस 1241, पी एस 1347
3	मध्य भारत क्षेत्र – मध्य प्रदेश, राजस्थान, उत्तरी महाराष्ट्र, गुजरात	जे एस 93–05, जे एस 95–60, जे एस 335, एन आर सी 7, एन आर सी 37, जे एस 80–21, समृद्धि, एम ए यू एस 81
4	दक्षिणी क्षेत्र – दक्षिणी महाराष्ट्र, कर्नाटक, तामिलनाडु, आन्ध्र प्रदेश	को 1, को 2, एम ए सी एस 24, पूजा, पी एस 1029, के एच एस बी 2, एल एस बी 1, प्रतिकार, फूले कल्याणी, प्रसाद
5	उत्तर पूर्वी क्षेत्र – बंगाल, छत्तीसगढ़, उतराखंड, उड़ीसा, आसाम, मेघालय	बिरसा सोयाबीन 1, इंदिरा सोया 9, प्रताप सोया 9, एम ए यू एस 71, जे एस 80–21

खेत की तैयारी

खेत की तैयारी के लिए रबी फसल की कटाई के बाद मई के महीने में तीन वर्षों में एक बार गहरी जुताई एवं प्रत्येक वर्ष सामान्य जुताई करके खेत को खुला छोड देना चाहिए ताकि उसमें रहने वाले हानिकारक कीट, बीमारी फैलाने वाले सूक्ष्म जीवों एवं खरपतवारों का नाश हो सके। बुवाई से पहले खेत को दो बार कल्टीवेटर या हैरो चलाकर पाटा लगा देना चाहिए ताकि खेत समतल हो जाए।

बुवाई

समय : सोयाबीन की खेती मुख्य रुप से खरीफ में होती है। रबी और जायद में भी कुछ क्षेत्रों में इसकी फसल ली जा सकती है।

खरीफ (जून–जुलाई) : सभी सोयाबीन क्षेत्र
उतरी पहाड़ी क्षेत्र – जून
उतरी मैदानी क्षेत्र – जून मध्य – जुलाई मध्य
मध्य क्षेत्र – जून मध्य – जुलाई मध्य
दक्षिणी क्षेत्र – जून मध्य – जुलाई अंत
उतर पूर्वी क्षेत्र – जून मध्य – जुलाई मध्य
रबी (नवम्बर) : मध्य भारत के कुछ क्षेत्र और दक्षिण भारत के सभी सोयाबीन क्षेत्र
जायद (फरवरी–मार्च) : दक्षिण भारत के सभी सोयाबीन क्षेत्र

बीज की मात्रा : सोयाबीन की सफल खेती के लिए बीज की उपयुक्त मात्रा होनी चाहिए। यदि बीज के जमने की क्षमता कम है तो बीज की मात्रा उसी हिसाब से बढा देनी चाहिए। बीज का चुनाव करते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि बीज ज्यादा पुराना न हो क्योंकि एक साल के बाद इसकी अंकुरण की क्षमता कम हो जाती है।

छोटा दाना – 60 से 65 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर
मध्यम दाना – 70 से 75 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर
मोटा दाना – 80 से 85 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर

बीज का उपचार : बुवाई से पहले बीज को 2 ग्राम थिरम + 1 ग्राम कार्बेन्डाजिम प्रति कि.ग्रा. बीज के हिसाब से भली प्रकार उपचारित कर लेना चाहिए। इसके बाद राईजोबियम एवं पी एस बी जीवाणु टीके से बीज को उपचारित करें। जीवाणु टीका की ठंडे गुड़ के घोल में मिलाकर बीज को उपचारित करें। इसके बाद बीज को छाया में सुखाकर तुरन्त बुवाई कर दें। सामान्यतः बीज को जीवाणु टीके की 5 ग्रा./कि.ग्रा. बीज की दर से उपचारित करें।

विधि : सोयाबीन की बुवाई कतारों में करनी चाहिए। कतार से कतार की दूरी उत्तर भारत के क्षेत्रों में 45–60 सें.मी. और अन्य क्षेत्रों में 30–45 सें.मी. तथा पौधे से पौधे की दूरी 5 सें.मी. होनी चाहिए। बुवाई 3–4 सें.मी. गहराई पर करनी चाहिए। अधिक गहराई से अंकुरित बीज को ऊपर आने में अधिक समय लगता है और पौधों की वृद्धि पर बुरा असर पड़ता है–

पोषक तत्व प्रबंधन

सोयाबीन से अच्छा उत्पादन लेने के लिए लगभग 5–10 टन प्रति हेक्टेयर अच्छी सड़ी हुई गोबर की खाद बुवाई से लगभग 20–25 दिन पहले खेत में अच्छी तरह से मिला देनी चाहिए। इसके अलावा सोयाबीन बीज को जीवाणु टीके से भी उपचारित करना चाहिए। सोयाबीन की खेती के लिए पोषक तत्वों की मात्रा निम्नलिखित प्रकार से होनी चाहिए।

नाइट्रोजन – 20–25 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर
फास्फोरस – 60–80 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर
पोटाश – 40–50 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर
गन्धक – 20–25 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर

अगर फास्फोरस सुपर फॉस्फेट से दिया गया हो तो अलग से देने की आवश्यकता नहीं है। अगर मिट्टी की जांच करके खाद दे रहे हैं तो खाद की मात्रा उसके हिसाब से ज्यादा कम कर सकते हैं। यदि सुपर फॉस्फेट का उपयोग नहीं किया जाना है तो गोबर की खाद डालने के समय 150–200 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर के हिसाब से जिप्सम भी मिलायें।

खरपतवार प्रबंधन

वर्षा के मौसम की फसल होने के कारण सोयाबीन में खरपतवारों की समस्या अधिक होती है। खरपतवारों के कारण उत्पादन में 30–70 प्रतिशत तक की कमी आ सकती है। खरपतवारों का नियन्त्रण निम्नलिखित प्रकार से किया जा सकता है।

1. फ्लुक्लोरोलिन या द्राइफ्लोरालिन 1 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर बुवाई से पहले या पेन्डीमिथालीन 1 कि.ग्रा. प्रति है. या क्लोमोजोन 1 कि.ग्रा. प्रति है. बुवाई के बाद और अंकुरण से पहले या इमाझेथापायर 75–100 ग्रा. प्रति है. या किवझालोफाप इथाइल 50 ग्रा. प्रति है. बुवाई के 15–20 दिन बाद प्रयोग कर सकते हैं। इन रसायनो को 750–800 लीटर पानी में घोल कर छिड़काव करना चाहिए।
2. खरपतवार की दुबारा वृद्धि को नष्ट करने के लिए बुवाई के 30 और 45 दिन बाद गुड़ाई करनी चाहिए।

जल प्रबंधन

सोयाबीन में सिचांई की आवश्यकता मिट्टी के प्रकार, तापमान और वर्षा के ऊपर निर्भर करती है। अगर लम्बे समय तक वर्षा न हो तो सिंचाई करनी चाहिए। सोयाबीन में 3 क्रान्तिक अवस्थाएं होती हैं –पौध अवस्था, फूल आने पर एवं दाना भरने पर। अतः इन अवस्थाओं पर सुनिश्चित करना चाहिए कि पानी की कमी न रहे। खेत में पानी के भराव से सोयाबीन पर विपरीत प्रभाव पड़ता है अतः जल भराव की स्थिति में जल निकास शीघ्र सुनिश्चित करना चाहिए।

कीट प्रबंधन

चक्र भृंग, तना मक्खी व अन्य मिट्टी में निवास करने वाले कीटों के प्रबन्धन के लिये फोरेट 10 जी 10 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर के हिसाब से बुवाई के समय उर्वरक के साथ–साथ मिट्टी में मिलायें। जिन स्थानों पर तना मक्खी से फसल की प्रारंभिक अवस्था में नुकसान होता है, वहाँ 7–10 दिन की फसल पर थायोमिथॉक्सम 25 डब्लू जी का 100 ग्रा. प्रति है. की दर से छिड़काव करें। ब्लू बीटल के नियंत्रण हेतु क्विनालफॉस 25 ई सी /1.5 ली./है. का छिड़काव करें।

तम्बाकू की इल्ली एवं रोयेंदार इल्ली छोटी अवस्था में झुण्ड में रहकर एक ही पौधे की पत्तियों को खाती है। इस प्रकार के पौधों को नष्ट कर देने से इनके प्रकोप से बचा जा सकता है। आवश्यकता पड़ने पर रासायनिक कीटनाशक जैसे – क्लोरोपाइरीफॉस 20 ई सी (1.5 ली./है.) या क्विनालफॉस 25 ई सी (1.5 ली. प्रति है.) या मिथोमिल 40 एस पी (1.0 कि.ग्रा./है.) का उपयोग करें।

चक्र भृंग द्वारा ग्रसित भाग अथवा पौधों को चक्र के नीचे से नष्ट कर देने पर रासायनिक कीटनाशकों की आवश्यकता कम हो जाती है। यदि यह संभव न हो तो ट्राइएझोफास 40 ई सी (0.8 ली./है.) या मोनोक्रोटोफॉस 36 एस एल (0.8 ली./है.) या इथोफेनप्रॉक्स 10 ई सी (1.0 ली./है.) का छिड़काव करें। छिड़काव करने के लिए प्रति हेक्टेयर 750–800 लीटर पानी का प्रयोग अवश्य करें। यदि पावर स्प्रेयर का प्रयोग किया जा रहा है तब 150 ली. पानी प्रति हेक्टेयर प्रयोग करें। पत्ती खाने वाली इल्लियों के नियंत्रण हेतु सूक्ष्मजीव आधारित जैविक कीटनाशकों का प्रयोग करें। बैक्टीरिया आधारित – बायोबिट, डायपेल, बायोआस्प, डेल्फिन, हाल्ट, अथवा फफूंद आधारित – बायोरिन, डिस्पेल को 1 कि.ग्रा. या 1 लीटर प्रति है. की दर से अथवा वायरस आधारित कीटनाशक को 250 एल ई की दर से फूल आने अथवा इल्लियों का प्रकोप शुरू होने की अवस्था पर छिड़काव करें। पत्ती

खाने वाली इल्लियों के रासायनिक नियंत्रण हेतु वही कीटनाशकों का उपयोग करें जो तंबाकू की इल्ली के नियंत्रण हेतु अनुशंसित किए गए हैं। कीटों के आक्रमण की तीव्रता निर्धारित करने के लिए यह अतिआवश्यक है कि फसल की सतत् निगरानी की जाए।

रोग प्रबंधन

पत्तियों पर होने वाले रोग जैसे माइरोथेसियम व सरकोस्पोरा पर्ण धब्बा रोग एवं राईजोक्टोनिया एरियल ब्लाइट की रोकथाम के लिए कार्बेन्डाजिम 50 डब्ल्यू पी या थायोफेनॅटमिथाइल 70 डब्ल्यू पी 0.5 कि.ग्रा. 700–800 लीटर पानी में मिलाकर प्रति हेक्टेयर की दर से बुआई के 35 व 50 दिन बाद दो छिड़काव करें। जीवाणुजनित फफोलों के लिए रोग होने पर कॉपर ऑक्सीक्लोराइड 2 कि.ग्रा. + स्ट्रेप्टोसाइक्लीन 200 ग्राम प्रति 700–800 लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करें। पीला मोजैक नियंत्रण के लिए थायोमिथॉक्साम 25 डब्ल्यू जी 200 ग्राम का 1000 लीटर पानी में घोल बनाकर या मिथाइल डिमेटॉन का 0.8 ली. प्रति है. की दर से छिड़काव करें। रोली (गेरूआ) रोग नियंत्रण के लिए हेक्साकोनाजोल या प्रोपिकोनाजोल या ऑक्सीकार्बोक्सिन के 0.1 प्रतिशत की दर से दो या तीन छिड़काव करें। प्रथम छिड़काव रोग दिखाई देते ही व दूसरा छिड़काव 15 दिन बाद करें। अधिक रोली प्रभावित क्षेत्रों में उपरोक्त में से कोई एक कवकनाशी का बुवाई के 35 से 40 दिन बाद बचाव हेतु एक छिड़काव करें।

कटाई एवं गहाई

जब सोयाबीन की पत्तियों का रंग पीला एवं फलियों का रंग पीला या भूरा हो जाए तो फसल को काट लेना चाहिए। कटाई के बाद चार–पांच दिन तक खेत में ही सूखने देना चाहिए, ताकि दानों में नमी की मात्रा कम होकर 13–14 प्रतिशत हो जाए। फिर इसके बाद इसकी गहाई कर लेनी चाहिये। यह ध्यान रखना चाहिए कि थ्रेशर की गति 300–400 आर पी एम ही रखी जाए। अधिक गति पर बीजों को नुकसान होता है।

उपज

अगर सही किस्म चुनकर सभी सस्य विधियाँ की जाएं तो 20–25 क्विंटल प्रति हेक्टेयर उपज प्राप्त की जा सकती है।

तिल

जलवायु

तिल उष्ण और उपोष्ण क्षेत्रों की फसल है, आमतौर पर इसकी खेती 1250 मीटर तक की ऊंचाई तक की जाती है। तिल की अच्छी बढ़वार और उपज के लिए 27–33^0 से. तापमान को अनुकूल पाया गया है। फसल की अच्छी बढ़वार और उपज के लिए 500–600 मि.मी. वर्षा की आवश्यकता पड़ती है। फसल पकने के समय अधिक वर्षा अच्छी नहीं होती है। इसी तरह फूल आने के समय भी अधिक वर्षा से फसल को नुकसान होता है। जल–भराव के कारण भी फसल को बहुत नुकसान होता है। तिल पानी की कमी को सहन करने की भी क्षमता रखती है इसी कारण इसकी अधिकतर खेती वर्षा–आधारित क्षेत्रों में की जाती है।

मृदा

तिल हल्की से लेकर भारी मृदाओं में सफलतापूर्वक उगायी जा सकती है। लेकिन बलुई दोमट मिट्टी जिसमें जल निकास अच्छा हो और पी एच मान 6.0 से 7.5 के बीच हो, तिल की खेती के लिए अधिक उपयुक्त पाई गई है। अम्लीय और क्षारीय मृदाएं तिल की खेती के लिए अनुपयुक्त होती हैं।

खेत की तैयारी

इस फसल का बीज छोटा होता है, इसलिए खेत की तैयारी अच्छी तरह करनी चाहिए जिससे बीज का अंकुरण ठीक से हो सके। बुवाई से पहले एक बार मिट्टी पलटने वाले हल से जुताई करने के बाद 2–3 बार हैरो या देसी हल चला कर खेत तैयार करना चाहिए। हल चलाने के बाद पाटा लगाएं।

फसल चक्र एवं प्रणाली

उत्तरी भारत में तिल के निम्नलिखित फसल चक्र एवं अर्न्तफसलीय प्रणाली प्रचलन में है–

तिल–गेहूं/जौ, तिल–सरसों/चना/मसूर/मटर, तिल+मक्का, तिल+मूंगफली, तिल+अरहर, तिल+कपास, तिल+मूंग, तिल+बाजरा, तिल+ज्वार।

उन्नत किस्में

किसी भी फसल की अधिक उपज लेने के लिए उन्नत किस्मों का विशेष योगदान होता है। विभिन्न राज्यों में खरीफ, रबी, अर्ध–रबी और जायद मौसम के लिए तिल की अति गुण सम्पन्न किस्मों का विवरण सारणी–1 में दिया गया है।

सारणी 1. विभिन्न राज्यों में तिल की बुवाई का उचित समय और उन्नत किस्में

राज्य	बुवाई का मौसम एवं उचित समय	उन्नत किस्में
पश्चिम बंगाल/ असम	खरीफ : मई के अंत से जून के अंत तक	उमा, पंजाब तिल 1, आर टी 125, टी के जी 21, टी के जी 22, टी के जी 55 बी–67, तिलोथामा, रामा, उमा, माधवी गौरी, आर एस 1
हिमाचल प्रदेश,	जायद : फरवरी–मार्च	
उत्तराखंड	रबी : नवम्बर–दिसम्बर	
महाराष्ट्र	खरीफ : जून मध्य से जुलाई जायद : फरवरी रबी : सितम्बर–अक्तूबर	फुले तिल नं.1, ताप्ती, पदमा, आर टी 54, आर टी 103, एन–8 डी एम 1, ताप्ती पूरवा 1, आर टी 54, आर टी 103
राजस्थान	खरीफ : जून के अंत से जुलाई के अंत तक	प्रताप, टी सी 25, टी 13, आर टी 46, आर टी 54, आर टी 103, आर टी 125
गुजरात	खरीफ : जून के अंत से जुलाई के पहले सप्ताह तक जायद : जनवरी–फरवरी अर्ध रबी : अगस्त के अंत में	गुजरात तिल नं. 1, गुजरात तिल नं. 2, आर टी 54, आर टी 103, पूरवा 1, आर टी 103
मध्य प्रदेश/ छत्तीसगढ़	खरीफ : जुलाई के दूसरे पखवाड़े में जायद : फरवरी अन्त से मार्च शुरू तक	एन 32, जे टी 2, टी के जी 21, टी के जी 22, टी के जी 55, उमा, बी 67, रामा
तमिल नाडु/ केरल	खरीफ : जून–जुलाई रबी : नवम्बर–दिसम्बर अर्ध–रबी : अगस्त–सितम्बर जायद : जनवरी–फरवरी	टी एम वी 4, टी एम वी 5, टी एम वी 6, वी आर आई 1, प्यायूर 1, सोमा, सूर्या, चिलक रामा, सूर्या, बी 67, सूर्या, सी ओ 1, सोमा
आंध्र प्रदेश	खरीफः जून–जुलाई जायद : जनवरी के दूसरे पखवाड़े में	गौरी, माधवी, टी 85, आर टी 54, आर टी 103 गौरी, माधवी, राजेश्वरी, वर्षा राजेश्वरी
बिहार/उड़ीसा	खरीफ : जून–जुलाई जायद : फरवरी	कृष्ण, पटना–64, कांके सफेद, विनायक, कालिका, कनक उमा, उषा, बी 67
उत्तरी भारत	खरीफ–जुलाई का प्रथम पखवाड़ा	पंजाब तिल 1, आर टी 125, हरियाणा तिल 1, शेखर, टी 12, टी 13, टी 14

बुवाई

अधिक उपज लेने के लिए बुवाई का समय विशेष महत्व रखता है। तापमान और प्रकाश की अवधि के प्रति संवेदनशील होने के कारण सर्दियों से तिल मुख्यतः खरीफ मौसम की फसल रही है। पिछले

कुछ वर्षों में वैज्ञानिकों ने तिल की कुछ ऐसी प्रजातियां भी विकसित की हैं जिन्हें कुछ क्षेत्रों में जायद, रबी और अर्ध–रबी मौसम में उगाया जा सकता है। वर्षा पर आधारित होने के कारण एवं खरपतवारों, कीटों और बीमारियों का अधिक प्रकोप होने के कारण, खरीफ मौसम की फसल की औसतन उपज अन्य मौसमों की तुलना में काफी कम रहती है। विभिन्न क्षेत्रों में विभिन्न मौसमों के दौरान तिल की बुवाई के उचित समय का विवरण भी सारणी–1 में दिया गया है। खरीफ मौसम की फसल के लिए जून के अंतिम सप्ताह से लेकर जुलाई के प्रथम सप्ताह को तिल की अधिक उपज के लिए उपयुक्त पाया गया है। अर्ध–रबी की फसल के लिए अगस्त मध्य या सितम्बर के शुरू में बुवाई की जाती है। जायद या ग्रीष्म मौसम की फसल से अधिक उपज लेने के लिए फरवरी के प्रथम सप्ताह से लेकर अंतिम सप्ताह तक बुवाई कर लेनी चाहिए। तापमान कम होने पर मार्च के प्रथम पखवाड़े में भी बुवाई की जा सकती है।

किस्म के चुनाव के साथ–साथ बीज की गुणवत्ता, तिल उत्पादन में बहुत महत्वपूर्ण है। राष्ट्रीय बीज निगम, प्रांतीय बीज निगमों या अन्य विश्वसनीय संस्थानों से प्रमाणित बीज ही खरीदें। बुवाई से पहले बीज को थिरम, कैप्टान या बाविस्टीन फफूंदनाशक दवा से 3 ग्राम प्रति कि.ग्रा. बीज के हिसाब से उपचारित करें।

आमतौर पर तिल को छिड़क कर बोया जाता है। छिड़क कर बुवाई करने से अधिक बीज की जरूरत पड़ती है, खेत में सही पौध संख्या प्राप्त नहीं होती है और खरपतवार नियंत्रण ठीक से नहीं होता है। अतः इस विधि से बुवाई करने से कम उपज मिलती है। अधिक उपज लेने के लिए तथा निराई–गुड़ाई में आसानी के लिए, तिल को कतारों में बोना चाहिए। कतारों के बीच का फासला 30 से 45 सें.मी. का रखें। वांछित पौध संख्या प्राप्त करने के लिए 4 से 5 कि.ग्रा. बीज प्रति हेक्टेयर प्रयोग करें। बुवाई के 15 से 20 दिन बाद पौधों की छंटाई करते समय पौधे से पौधे की दूरी 10 से 15 सें.मी. रखें। बुवाई के समय बीज को 1.5 से 2.5 सें.मी. की गहराई पर डालें। तिल का बीज बहुत छोटा होता है, अतः बीज को समान रूप से कतार में बोने के लिए 8–10 गुनी बारीक सूखी रेत या मिट्टी या छनी हुई कम्पोस्ट की खाद में मिला कर बोना चाहिए।

पोषक तत्व प्रबंधन

तिल की भरपूर पैदावार के लिए अनुमोदित और संतुलित मात्रा में उर्वरकों का उपयोग आवश्यक है। उर्वरकों की मात्रा, मिट्टी की जांच और पानी की उपलब्धता पर निर्भर करती है। मिट्टी की जांच संभव न होने की अवस्था में सिंचित क्षेत्रों में 40–50 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 20–30 कि.ग्रा. फॉस्फोरस और 20 कि.ग्रा. पोटाश प्रति हेक्टेयर देनी चाहिए लेकिन वर्षा आधारित फसल में 20–25 कि.ग्रा. नाइट्रोजन और 15 से 20 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर फॉस्फोरस की मात्रा का प्रयोग करें। मुख्य तत्वों के अतिरिक्त 10 से 20 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर गंधक का उपयोग करने से तिल की उपज में आशातीत वृद्धि की जा सकती है। सिंचित क्षेत्रों में नाइट्रोजन की आधी मात्रा और अन्य उर्वरकों की पूरी मात्रा जबकि असिंचित क्षेत्रों में सभी उर्वरकों की पूरी मात्रा बुवाई के समय बीज से 3–4 सें.मी. गहराई पर प्रयोग करें। नाइट्रोजन की आधी मात्रा को बुवाई के 30–35 दिन बाद खड़ी फसल में प्रयोग करें। जिन क्षेत्रों

में जिंक की कमी हो वहां पर दो वर्ष में एक बार 25 कि.ग्रा. जिंक सल्फेट प्रति हेक्टेयर प्रयोग करें। आलू की फसल के बाद तिल में खाद की आवश्यकता नहीं पड़ती है। लंबे समय के लिए सूखा पड़ने की अवस्था में खड़ी फसल में यूरिया के 2 प्रतिशत घोल का छिड़काव करें।

जल प्रबंधन

सिंचित क्षेत्रों में या तो सिंचाई के बाद खेत तैयार करके बुवाई करें या बुवाई के तुरंत बाद पहली सिंचाई करने से अंकुरण अच्छा आता है और पौधों की बढ़वार अच्छी होती है। जायद मौसम में फसल को 5–6 सिंचाइयों की आवश्यकता पड़ती है। प्रथम सिंचाई के बाद दो सिंचाइयां 20–25 दिन के अंतराल पर करें। बाद की सिंचाई 10–15 दिन के अंतर पर करें। रबी के मौसम में भी फसल को 4–5 सिंचाइयों की आवश्यकता पड़ती है। खरीफ की फसल में आवश्यकतानुसार सिंचाई करें। ध्यान रहे तिल में पुष्पन एवं फली में बीज भरने की अवस्था में मृदा में नमी की कमी न हो। इन अवस्थाओं पर नमी की कमी होने पर फसल की सिंचाई अवश्य करें। खरीफ के मौसम में आवश्यकतानुसार अधिक जल की निकासी अथवा नमी संरक्षण के उचित उपाय करें।

खरपतवार प्रबंधन

तिल की फसल में खरपतवारों से बहुत नुकसान होता है। अतः फसल से अधिक उपज लेने के लिए फसल की बुवाई के बाद 25–30 दिन तक खरपतवारों से मुक्त रखें। सामान्यतया दो निराई–गुड़ाई करने से खरपतवारों पर नियंत्रण पाया जा सकता है। पहली निराई–गुड़ाई फसल बोने के 15 से 20 दिन के अन्दर करनी चाहिए। अगर खरपतवार अधिक हों तो बुवाई के 35 से 40 दिन के अंदर दूसरी निराई–गुड़ाई करें। दूसरी निराई–गुड़ाई पर नाइट्रोजन की शेष मात्रा का भी प्रयोग करें। निराई–गुड़ाई के लिए मजदूरों की कमी होने पर, तिल में एक कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर की दर से फ्लूक्लोरेलिन सक्रिय दवा को 400–500 लीटर पानी में घोलकर बुवाई से पहले खेत में छिड़कने से भी खरपतवारों को नष्ट किया जा सकता है। फसल बोने से पहले दवाई को सतही मिट्टी में मिला दें। फ्लुक्लोरेलिन के अतिरिक्त एलाक्लोर (1.75 कि.ग्रा.) या पेण्डीमिथालिन (1 कि.ग्रा.) के प्रयोग से भी खरपतवारों पर नियंत्रण पाया जा सकता है। इन दोनों खरपतवारों का प्रयोग बुवाई के बाद 2–3 दिन के अंदर करें। दवाई को 400–500 लीटर पानी में घोल कर बराबर छिड़काव करें। आवश्यकतानुसार खरपतवारनाशी दवा के प्रयोग के साथ–साथ फसल की 20 से 30 दिन की अवस्था पर एक निराई–गुड़ाई भी करें। सस्य विधियां जैसे कि अर्न्तफसलीकरण, ग्रीष्म में गहरी जुताई, उचित फसल चक्र, पलवार आदि को अपनाने से भी खरपतवारों को नियंत्रित किया जा सकता है।

कीट व रोग प्रबंधन

तिल में प्रमुख रूप से पत्ती मोड़क पत्ते खाने वाली सूंडी एवं फली भेदक कीटों का अधिक प्रकोप होता है। पत्ती व फूल की सूंडी कोमल पत्तियों और फलियों को खाती हैं। इन कीटों से बचाव के लिए क्विनालफॉस (25 ई सी) 1.5 लीटर प्रति हेक्टेयर की दर से प्रथम पौधों में फूल की अवस्था, दूसरा फली लगने की शुरूआत व तीसरा पूर्ण फली लगने पर छिड़काव करें।

पुष्पगुच्छा या फाइलोडी नामक रोग से फसल को काफी नुकसान होता है। इस बीमारी के लक्षण फूल आने के समय नजर आते हैं। रोगग्रस्त पौधों में फलियों की जगह हरी पत्तियों के गुच्छे बन जाते हैं। रोगी पौधे उखाड़ कर नष्ट कर दें। फसल की बुवाई थोड़ी देर से करें। रोगरोधी किस्में जैसे ओ एम टी 10 एवं आर टी 125 की बुवाई करें। यह रोग कीटों द्वारा फैलता है। अतः इन कीटों की रोकथाम के लिए बुवाई से पहले खेत में 10 कि.ग्रा. फोरेट कीटनाशक का प्रयोग करें या खड़ी फसल में मिथाइल डेमेटान 25 ई सी (0.05 प्रतिशत) या डाइमेथोएट 30 ई सी का (0.3 प्रतिशत) का घोल बनाकर छिड़काव करें। जड़ व तना सड़न की रोकथाम के लिए फफूंदनाशी से बीज उपचार करें। रोगरोधी किस्मों (आर टी 54, आर टी 55) का प्रयोग करें। सर्कोस्पोरा ब्लाइट से भी तिल की फसल को नुकसान होता है। इस रोग के भूरे रंग के धब्बे पत्ती पर बनते हैं, बाद में इनका आकार बढ़ जाता है और ये धब्बे तने पर भी आ जाते हैं। रोग सहनशील किस्म टी के जी 21 का प्रयोग करें। कार्बेन्डाजिम का 0.05 प्रतिशत घोल बना कर 15 दिन के अंतराल पर छिड़काव करें।

कटाई एवं मड़ाई

पौधों की फलियां जब चटकना शुरू होने लगें या फलियों और पत्तों का रंग पीला पड़ जाए तब फसल की कटाई कर लेनी चाहिए। देरी से कटाई करने पर फलियों के चटकने से बहुत अधिक नुकसान होता है। फसल को काटकर 4–5 दिन धूप में सुखाने के बाद मड़ाई करनी चाहिए। सूखे हुए पौधों को फर्श पर पीटने से दाने फलियों से अलग हो जाते हैं। उसके बाद दानों को अच्छी तरह साफ कर लें। साफ करने के बाद दानों को अच्छी तरह धूप में सुखाएं ताकि दाने में नमी की मात्रा लगभग 8–10 प्रतिशत रह जाए। सुखाने के बाद दानों को साफ बर्तनों में भर कर उनको अच्छी तरह बंद करें ताकि हवा का आदान–प्रदान न हो पाए।

उपज

तिल की कृषि की उन्नत प्रौद्योगिकी अपनाने से किसान 10 से 12 क्विंटल/हेक्टेयर उपज प्राप्त कर सकते हैं। तिल की न केवल भारत में बल्कि अंतर्राष्ट्रीय बाजार में भी काफी मांग है। तिलहनी फसलों में तिल के दाम काफी अधिक हैं, अतः इसकी खेती से किसानों को अधिक लाभ प्राप्त होता है।

अरंडी

जलवायु

इसकी खेती गर्म जलवायु तथा 50 से 75 सें.मी. वर्षा वाले क्षेत्रों में अच्छी तरह की जा सकती है। अच्छी उपज और बढ़वार के लिए 20 से 26^0 से. तापमान और वायु में कम आर्द्रता को उपयुक्त पाया गया है। भारत में मुख्यतः इसकी खेती खरीफ मौसम में की जाती है, लेकिन उड़ीसा, उत्तर प्रदेश और मध्य प्रदेश के कुछ भागों में रबी मौसम में भी अरंडी की खेती की जा सकती है। अरंडी सूखा सहन करने की क्षमता रखती है, अतः शुष्क और गर्म क्षेत्रों में इससे अच्छी उपज मिलती है। अधिक वर्षा वाले क्षेत्रों में अरंडी की अधिक बढ़वार होती है और कीटों व रोगों का प्रकोप भी अधिक होता है।

मृदा

अरंडी को सभी प्रकार की मृदाओं में उगाया जा सकता है, परन्तु अधिक उपज के लिए अच्छी जल निकास वाली लाल दोमट मिट्टी को दक्षिणी भारत में और हल्की जलोढ़ मिट्टी को उत्तरी भारत में उपयुक्त पाया गया है।

उन्नत किस्में

अरंडी की अनुमोदित विभिन्न राज्यों के लिए उन्नत किस्में सारणी 1 में दी गई हैं–

सारणी 1. विभिन्न राज्यों के लिए अरंडी की संस्तुत किस्में

आन्ध्र प्रदेश	संकुल	अरूणा, सौभाग्य, भाग्य, ज्योति, क्रान्ति, किरण
	संकर	जी सी एच 4, जी सी एच 5, डी सी एच 32, डी सी एच 519, डी सी एच 177, पी सी एच 1, जी सी एच 6
गुजरात	संकुल	वी आई 9, एस के आई 73, (जी सी–2)
	संकर	जी ए यू सी एच 1, जी सी एच 2, जी सी एच 4, जी सी एच 5, डी सी एच 32, जी सी एच 6
कर्नाटक	संकुल	अरुणा, आर सी 8, ज्योति, ज्वाला
	संकर	जी सी एच 4, जी सी एच 5, जी सी एच 6, डी सी एच 177
महाराष्ट्र	संकुल	ज्योति, ए के सी 1
	संकर	जी सी एच 4, जी सी एच 5, जी सी एच 6, डी सी एच 177
राजस्थान	संकुल	ज्योति
	संकर	जी सी एच 4, जी सी एच 5, डी सी एच 32, जी सी एच 6, आर एच सी 1, जी सी एच 6, डी सी एच 177

तमिलनाडु	संकुल	एस ए 2, टी एम वी 5, ज्योति, टी एम वी 6
	संकर	जी सी एच 4, जी सी एच 5, डी सी एच 32, टी एम वी सी एच 1, जी सी एच 6, डी सी एच 177
उत्तरी भारत	संकुल	ज्योति, अरूणा, क्रान्ति, काल्पी 6, टी 3, पंजाब अरंडी नं. 1
	संकर	जी सी एच 4, जी सी एच 5, डी सी एच 32, जी एयू सी एच 1, जी सी एच 6, डी सी एच 177, डी सी एच 519

फसल प्रणालियां

अरंडी की शुद्ध या अर्न्तफसली खेती की जाती है। अर्न्तफसली खेती में अरंडी को अरहर, मूंग, उड़द, ग्वार, मूंगफली, सोयाबीन, तिल, मिर्च, बाजरा आदि फसलों के साथ उगाया जाता है। अर्न्तफसली खेती में अरंडी की पौध संख्या शुद्ध फसल के बराबर रखी जाती है तथा अर्न्तफसलों की पौध संख्या फसल कतार के अनुपात के हिसाब से रखी जाती है। विभिन्न प्रदेशों के लिए अनुमोदित फसलें इस प्रकार हैं–

अन्तःफसल प्रणाली	कतारों का अनुपात	राज्य
अरंडी + अरहर	1 : 1	गुजरात, राजस्थान, हरियाणा
अरंडी + लोबिया या मूंग या उड़द या मोठबीन या बाजरा	1 : 2	गुजरात, राजस्थान, आन्ध्र प्रदेश, हरियाणा
अरंडी + मूंगफली	1 : 5	गुजरात, राजस्थान, हरियाणा, कर्नाटक, आन्ध्र प्रदेश

शुद्ध फसल के लिए कम तथा मध्य अवधि वाली किस्मों का प्रयोग करें। अर्न्तफसली खेती के लिए मध्य तथा लम्बी अवधि वाली किस्मों का प्रयोग करें। सिंचित क्षेत्रों में एक वर्षीय फसल चक्रों में बाजरा–अरण्डी, ज्वार–अरण्डी, अरण्डी–तिल, अरण्डी–सूरजमुखी, अरण्डी–मूंग तथा अरण्डी–मूंगफली को गुजरात, आन्ध्र प्रदेश तथा राजस्थान में लाभकारी पाया गया है। दक्षिणी भारत के बारानी क्षेत्रों में दो वर्षीय फसल चक्र में अरण्डी–बाजरा, अरण्डी–अरहर, अरण्डी–मूंगफली और अरण्डी–ज्वार को उपयुक्त पाया गया है।

खेत की तैयारी

वर्षा के शुरू होते ही खेत की अच्छी तरह से तैयारी करें। गर्मियों में उथली मिट्टियों के खेत की गहरी जुताई को अति उपयुक्त पाया गया है। बुवाई से पहले खेत की 2–3 बार हैरो से जुताई करें।

बुवाई

बारानी क्षेत्र में खरीफ फसल की बुवाई के लिए जून के दूसरे पखवाड़े को दक्षिणी राज्यों में उपयुक्त पाया गया है। गुजरात, राजस्थान और अन्य राज्यों में जुलाई के पहले पखवाड़े को अरंडी

की बुवाई के लिए उपयुक्त पाया गया है। सिंचित क्षेत्रों में जुलाई के अन्तिम सप्ताह या अगस्त के प्रथम पखवाड़े में बुवाई करने से फसल को सेमीलूपर कीट से बचाकर अधिक उपज प्राप्त होती है। रबी फसल की बुवाई के लिए सितम्बर–अक्टूबर और ग्रीष्म काल की फसल के लिए जनवरी महीने को उपयुक्त पाया गया है। बारानी क्षेत्रों में वर्षा में देरी होने पर या समय पर बुवाई की फसल के नष्ट होने पर अरंडी की फसल की बुवाई 15 अगस्त तक की जा सकती है। देरी पर बुवाई करने पर बीज को 24–48 घण्टे तक पानी में भिगोकर बुवाई करें। ऐसा करने पर अंकुर जल्दी आ जाता है। इसके अतिरिक्त कम अवधि वाली किस्मों जैसे कि डी सी एच–32, डी सी एच 177, ज्योति, क्रांति, जी सी 2, जी सी एच–4 इत्यादि का पछेती बुवाई के लिए प्रयोग करें। पछेती बुवाई में पंक्ति से पंक्ति की 45 सें.मी. तथा पौधे से पौधे की 45 सें.मी. की दूरी रखें।

बीज की मात्रा और बुवाई की विधि

अच्छी उपज प्राप्त करने के लिए किसान प्रमाणित स्रोतों से ही संकुल और संकर किस्मों का बीज खरीदें। संकर किस्म का हर वर्ष नया बीज खरीदना जरूरी है जबकि संकुल किस्मों में दो–तीन वर्ष तक नया बीज खरीदने की आवश्यकता नहीं होती है। बुवाई से पहले बीज को 2 से 3 ग्राम थिरम या बाविस्टीन (कार्बेन्डाजिम) प्रति कि.ग्रा. बीज की दर से उपचारित करें। अरंडी के बीज की मात्रा तथा पौधो ंकी संख्या, जलवायु और किस्मों पर आधारित होती है। अधिक वर्षा वाले क्षेत्रों में या जहां खेत में अच्छी नमी बनी रहती है, अरंडी की बढ़वार बहुत अधिक होती है। अधिक उपज लेने के लिए आवश्यक है कि फसल की कटाई के समय तक खेत में बारानी क्षेत्रों में 18500 और सिंचित क्षेत्रों में 14000 पौधे प्रति हेक्टेयर हों। वांछित पौध संख्या प्राप्त करने के लिए असिंचित क्षेत्रों में पंक्ति से पंक्ति के बीच 90 से 120 सें.मी. और पौधे से पौधे के बीच 45 से 60 सें.मी. की दूरी रखें। सिंचित क्षेत्रों में पंक्ति से पंक्ति और पौधे से पौधे के बीच अन्तर 120 सें.मी. × 60 सें.मी. रहे। अधिक वर्षा और जमीन में अधिक नमी होने पर 90 × 90 सें.मी. या 120 सें.मी. × 120 सें.मी. की व्यवस्था रखें। अरंडी की बुवाई में देरी होने पर 60 × 30 सें.मी. या 90 × 20 सें.मी. की दूरी पर बुवाई करें। बीज के अच्छे अंकुरण के लिए पोरा विधि का प्रयोग करें। बुवाई के लिए सीड ड्रिल का उपयोग भी किया जा सकता है। जमीन में नमी कम होने पर बीज को 24–48 घंटे तक पानी में भिगोकर बुवाई करें। पानी में डालने के बाद जो बीज तैरने लगें, उनको निकाल कर अलग कर देना चाहिए।

पोषक तत्व प्रबंधन

मिट्टी परीक्षण के आधार पर उर्वरकों का प्रयोग करें। मिट्टी परीक्षण के अभाव में, असिंचित क्षेत्रों में बुवाई के समय 20 कि.ग्रा. नाइट्रोजन और 40 कि.ग्रा. फॉस्फोरस प्रति हेक्टेयर का प्रयोग करें। वर्षा के पानी की उपलब्धता के हिसाब से 20 कि.ग्रा. नाइट्रोजन का फसल की 35–40 दिन और 65–70 दिन की अवस्था पर प्रयोग करें। सिंचित क्षेत्रों में बुवाई के समय 40 कि.ग्रा. नाइट्रोजन और 40 कि.ग्रा. फॉस्फोरस के उपयोग के अतिरिक्त हर तुड़ाई के बाद 30 दिन के अन्तराल पर 20 कि.ग्रा. नाइट्रोजन का प्रयोग प्रति हेक्टेयर करें। जिन क्षेत्रों में गंधक की कमी हो तो 20 कि.ग्रा./हेक्टेयर की दर से उनमें सल्फर का प्रयोग करने से उपज और गुणवत्ता में सुधार किया जा सकता है। बारानी क्षेत्रों में फूल

आने की अवस्था पर अगर वर्षा हो तो 20 कि.ग्रा. नाइट्रोजन/हेक्टेयर का बुरकाव करें। जहां जस्ते और लोहे की कमी हो वहां पर जिंक सल्फेट की 10 कि.ग्रा. और आयरन सल्फेट की 30 कि.ग्रा. मात्रा/हेक्टेयर प्रयोग करें। जहां पर लवणों की अधिकता हो वहां पर बीज को मेंड़ बनाकर मेंड़ की ढाल पर बुवाई करें। इसके अतिरिक्त लवणों के प्रति सहनशील किस्मों (जी सी एच 5, जी सी 2) का प्रयोग करें।

जल प्रबंधन

अरंडी मुख्यतः वर्षा आधारित क्षेत्रों की फसल है। परन्तु लम्बे समय तक वर्षा न होने पर फसल की फूल एवं फल आने की अवस्था पर सिंचाई करने से उपज में आशातीत बढ़ोत्तरी होती है। सिंचित क्षेत्रों में वर्षा की मात्रा, तापमान और फसल की अवधि पर सिंचाइयों की संख्या निर्भर करती है। उत्तरी भारत में खरीफ के मौसम में अरंडी को प्रायः दो–तीन सिंचाइयों की आवश्यकता पड़ती है। गुजरात में फसल को 6–7 सिंचाइयों की जरूरत पड़ती है, जबकि आन्ध्र प्रदेश और कर्नाटक में 5–6 सिंचाइयों में फसल की पानी की जरूरत पूरी हो जाती है। बुवाई के 55 दिन बाद फसल की सिंचाई करें। अन्य सिंचाइयां पहली सिंचाई के बाद 20 से 25 दिन के अन्तराल पर करें। बारानी क्षेत्रों में मृदा पलवार का प्रयोग करने से फसल की उपज में बढ़ोत्तरी की जा सकती है।

खरपतवार प्रबंधन

अरंडी की फसल में खरपतवारों से काफी नुकसान होता है। पंक्ति से पंक्ति तथा पौधे से पौधे के बीच अधिक दूरी होने और साथ ही वे पौधों की शुरू में कम बढ़वार के कारण, अरंडी की फसल में खरपतवारों का बहुत अधिक प्रकोप होता है। अतः फसल की अच्छी बढ़वार और उपज के लिए यह आवश्यक है कि फसल को बुवाई के बाद 45–50 दिन तक खरपतवारों से बिल्कुल मुक्त रखें। इसके लिए 15–20 दिन के अन्तराल पर फसल की दो बार निराई–गुड़ाई करें। खरपतवारनाशियों के प्रयोग से भी खरतपवारों के प्रकोप को कम कर सकते हैं। इस फसल में खरपतवार नियंत्रण के लिए फ्लूक्लोरोलिन या ट्राईफ्लूरालिन के 1.00 कि.ग्रा. सक्रिय तत्व का प्रति हेक्टेयर बुवाई से पहले छिड़काव करें। छिड़काव के लिए रसायन को 600–800 लीटर पानी में घोलें और छिड़काव के बाद रसायन को मिट्टी की ऊपर की परत में अच्छी तरह मिला दें।

कीट प्रबंधन

अरंडी की फसल को नुकसान पहुंचाने वाले कीटों में लाल बालदार सूण्डी, सेमीलूपर (कुबड़ा कीड़ा) तथा कैप्सूल बोरर (फली छेदक), तम्बाकू की सूण्डी, तेला, सफेद मक्खी आदि प्रमुख हैं। लाल बालदार और सेमीलूपर की सूण्डियां पत्तियों को बहुत तेजी से खाती हैं और कभी–कभी तो फसल को पत्ता रहित कर देती हैं। ये दोनों कीट जुलाई और अगस्त के महीने में बहुत सक्रिय होते हैं। इन दोनों कीटों की रोकथाम के लिए मोनोक्रोटोफास (36 प्रतिशत ई.सी.) 0.05 प्रतिशत का घोल बनाकर छिड़काव करें। लाल बालों वाली सूण्डियों के प्रौढ़ (पतंगे) रोशनी की तरफ आकर्षित होते हैं। पहली वर्षा के बाद एक महीने तक लाईट ट्रैप का उपयोग करके इसकी रोकथाम की जा सकती है। फली छेदक कीट की सूंडियां ही

फसल को मुख्य रूप से हानि पहुंचाती हैं। फूल आने की अवस्था पर ही कीट का प्रकोप शुरू हो जाता है। अधिक प्रकोप होने पर पुष्प कुन्ज पूरी तरह नष्ट हो जाता है और उसमें फलियां नहीं बनती हैं। फलियां बनने पर कीट उनमें छेदकर नष्ट कर देता है। इसकी रोकथाम के लिए भी मोनोक्रोटोफास का छिड़काव करें।

रोग प्रबंधन

उक्ठा, आल्टरनेरिया व सर्कोस्पोरा पर्ण धब्बे, जड़ गलन, पत्तियों का झुलसा रोग और पाउडरी मिल्डयू इत्यादि अरंडी के प्रमुख रोग हैं। अधिकतर रोगों की रोकथाम अच्छी गुणवत्ता वाले बीज का प्रयोग करने तथा उसको बुवाई से पहले रसायन से उपचारित करने से की जा सकती है। बुवाई से पहले बीज को 3 ग्राम थीरम या 2 ग्राम कार्बेन्डाजिम/कि.ग्रा. बीज के हिसाब से उपचारित करें। पौध गलन, आल्टरनेरिया तथा सर्कोस्पोरा पर्ण धब्बे की रोकथाम के लिए कॉपर आक्सीक्लोराइड के 0.3 प्रतिशत या मेकोजेब के 0.25 प्रतिशत के 2–3 छिड़काव करें। उक्ठा रोग के कारण आरंभ की पत्तियां किनारों से पीली पड़नी शुरू होती हैं और कुछ ही दिनों में पूरी की पूरी पीली होकर गिर जाती हैं। मुख्य जड़ तथा दूसरी जड़ों का रंग काला हो जाता है। पौधे का तना सिकुड़ जाता है तथा खोखला हो जाता है। जहां उक्ठा रोग की अधिक समस्या हो वहां पर किसान उक्ठा रोग के प्रति रोधक किस्मों का प्रयोग करें, जैसे कि जी सी एच 4, डी सी एच 32, ज्योति, ज्वाला, जी सी एच 5 तथा डी सी एच 177। इसी तरह जड़ गलन रोग के प्रति ज्योति, ज्वाला और जे एच बी–665 को सहनशील पाया गया है। उक्ठा और जड़ गलन के प्रकोप को कम करने के लिए अरंडी के बाद मोटे अनाजों की खेती करें और उसी खेत में बार–बार अरंडी की खेती न करें। अरंडी + अरहर की अर्न्तफसली से भी उकठा रोग को कम कर सकते हैं।

कटाई एवं गहाई

अरंडी की फसल में सिट्टों की तीन–चार बार तुड़ाई करनी पड़ती हैं। सामान्यतः सिट्टा बुवाई के 90–120 दिन बाद कटाई के लिए तैयार हो जाता है। 30 दिन के अन्तराल पर सिट्टों की तुड़ाई करें। सिट्टों की उस समय तुड़ाई करें जब उनमें कुछ कैप्सूल (फलियां) भूरे रंग के हो जाएं। पके सिट्टों को काटने के बाद कुछ दिनों के लिए धूप में सुखाएं। सूखने के बाद सिट्टों की गहाई करें। गहाई के लिए सिट्टों की डंडे से पिटाई करें या सिट्टों के ऊपर बैल या ट्रैक्टर चलाएं। गहाई के लिए थ्रेशर का प्रयोग भी किया जा सकता है। गहाई के बाद दानों को अलग करके उनको अच्छी तरह सुखा लें। सुखाने के बाद दानों को साफ बोरी में भरकर रख दें।

उपज

भारत में प्रति हेक्टेयर अरंडी की औसत उपज अन्य देशों की तुलना में अच्छी है। बारानी क्षेत्रों में 800–1000 कि.ग्रा. की उपज आसानी से प्राप्त हो जाती है। सिंचित क्षेत्रों में 2000–2500 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर की उपज आसानी से मिल जाती है। अच्छी देखभाल और अनुकूल जलवायु में किसान 4000–5000 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर तक उपज प्राप्त कर सकते हैं।

कपास

जलवायु

कपास की उत्तम फसल के लिए आदर्श जलवायु का होना आवश्यक है। फसल के उगने के लिए कम से कम 16^0 से. तथा अंकुरण के लिए आदर्श तापमान $32–34^0$ से. होना उचित है। इसकी बढ़वार के लिए $21–27^0$ से. तापमान चाहिए। फल लगते समय दिन का तापमान $25–30^0$ से., और रातें ठंडी होनी चाहिए। कपास के लिए कम से कम 50 सें.मी. वर्षा का होना आवश्यक है। 125 सें.मी. से अधिक वर्षा का होना हानिकारक होता है।

मृदा

कपास के लिए उपयुक्त मृदा में अच्छी जलधारण एवं जल निकास क्षमता होनी चाहिए। जिन क्षेत्रों में वर्षा कम होती है, वहां इसकी खेती अधिक जल–धारण क्षमता वाली मटियार मृदा में की जाती है। जहां सिंचाई की सुविधाएं उपलब्ध हों वहां बलुई और बलुई दोमट मृदा में इसकी खेती की जा सकती है। यह हल्की अम्लीय और क्षारीय मृदा में उगाई जा सकती है। इसके लिए उपयुक्त पी एच मान 5.5–6.0 है पर इसकी खेती 8.5 पी एच मान तक वाली मृदा में भी की जा सकती है।

फसल चक्र

जलवायु, मृदा, सिंचाई की सुविधाओं और किसानों की अपनी व्यक्तिगत आवश्यकताओं के अनुसार कपास की फसल भिन्न–भिन्न फसल चक्र के अंतर्गत उगाई जा सकती है जो निम्न प्रकार से हैं–

वर्षा आधारित क्षेत्रों के लिए फसल चक्र :

मध्य और दक्षिण भारत के वर्षा आधारित क्षेत्रों में कपास की एक ही फसल उगाई जाती है। कपास के बाद अगले वर्ष बाजरा, ज्वार, मिर्च या तम्बाकू आदि की फसलें भी उगाई जाती हैं।

सिंचाई आधारित क्षेत्रों के लिए फसल चक्र :

कपास – गेहूं/जौ, कपास – बरसीम/सेंजी/जई, कपास – सूरजमुखी,

कपास – मूंगफली

कपास की अर्न्तफसली खेती :

कपास + ज्वार, कपास + दलहनी फसल, कपास + मक्का

कपास + सोयाबीन, कपास + अरण्डी, कपास + रागी

कपास + प्याज, कपास + मूंगफली, कपास + मिर्च

उत्तरी भारत में कपास–गेहूं, कपास–मटर और कपास–ज्वार तथा दक्षिणी भारत में कपास–धान, कपास–ज्वार, कपास–मूंगफली और धान–कपास फसल चक्र मुख्य हैं। उत्तरी भारत में कपास के बाद गेहूं की फसल लेने के लिए कपास की जल्दी पकने वाली किस्में बोनी चाहिए और गेहूं की देर से बोने वाली किस्मों का चयन करना चाहिए। हाल ही में हुए अनुसंधान से पता चला है कि कपास की कटाई के बाद बिना जुताई आधुनिक मशीनों के द्वारा गेहूं की समय पर बुवाई की जा सकती है जिससे अधिक उपज तथा पानी की बचत होती है। बिना जुताई के खेती कपास–गेहूं फसल चक्र में ज्यादा सटीक सिद्ध हुई है।

उन्नत किस्में

भारत में कपास की उन्नत किस्में जो मुख्य क्षेत्रों में उपयुक्त किस्में सारणी 1 में दी गई हैं।

सारणी 1. विभिन्न क्षेत्रों के लिए कपास की उपयुक्त किस्में

राज्य	**अमेरिकन कपास** *(गोसीपियम हिर्सुटम)*	**देशी कपास** *(गोसीपियम आर्बोरिम)*	**संकर**
उत्तरी क्षेत्र			
पंजाब	एफ 286, एल एस 886, एफ 414, एफ 846, एफ 1861, एल एच 1556, पूसा 8–6, एफ 1378	एल डी 230, एल डी 327, एल डी 491, पी एयू 626, मोती, एल डी 694	फतेह, एल डी एच 11, एल एच एच 144
हरियाणा	एच 1117, एच एस 45, एच एस 6, एच 1098, पूसा 8–6	डी एस 1, डी एस 5, एच 107, एच डी 123	धनलक्ष्मी, एच एच एच 223, सी एस ए ए 2, उमा शंकर,
राजस्थान	गंगानगर अगेती, बीकानेरी नरमा, आर एस 875, पूसा 8–6, आर एस 2013	आर जी 8	राज एच एच 116 (मरूविकास)
पश्चिमी उत्तर प्रदेश	विकास	लोहित यामली	–
मध्य क्षेत्र			
मध्य प्रदेश	कंडवा 3, के सी 94–2	माल्जरी	जे के एच वाई 1, जे के एच वाई 2 (जीरो टिलेज)
महाराष्ट्र	पी के वी 081, एल आर के 516, सी एन एच 36, रजत	पी ए 183, ए के ए 4, रोहिणी	एन एच एच 44, एच एच वी 12
गुजरात	गुजरात कॉटन 12, गुजरात कॉटन 14, गुजरात कॉटन 16, एल आर के 516, सी एन एच 36	गुजरात कॉटन 15, गुजरात कॉटन 11	एच 8, डी एच 7, एच 10, डी एच 5

दक्षिण क्षेत्र			
आंध्र प्रदेश	एल आर ए 5166, एल ए 920, कंचन	श्रीसाईलम महानदी, एन ए 1315	सविता, एच बी 224
कर्नाटक	शारदा, जे के 119, अबदीता	जी 22, ए के 235	डी सी एच 32, डी एच बी 105, डी डी एच 2, डी डी एच 11
तमिलनाडु	एम सी यू 5, एम सी यू 7, एम सी यू 9, सुरभि	के–10, के–11	सविता, सूर्या, एच बी 224, आर सी एच 2, डी सी एच 32

गोसीपियम हर्बेसियम किस्में : रायचूर 51, डी.बी. 3–12, केवल कर्नाटक में उगाई जाती है।

गोसीपियम बारबाडेन्स किस्म सुविन (अंजलि) केवल तमिलनाडु में उगाई जाती है।

पिछले 8 वर्षों में बी.टी. कपास की कई प्रजातियां भारत के सभी क्षेत्रों में उगाई जाने लगी हैं जिनमें मुख्य इस प्रकार से हैं – आर सी एच 308, आर सी एच 314, आर सी एच 134, आर सी एच 317, एम आर सी 6301, एम आर सी 6304।

खेत की तैयारी

दक्षिण और मध्य भारत में कपास वर्षा–आधारित काली भूमि में उगाई जाती है। इन क्षेत्रों में खेत तैयार करने के लिए एक गहरी जुताई मृदा पलटने वाले हल से रबी फसल की कटाई के बाद करनी चाहिए जिसमें खरपतवार नष्ट हो जाते हैं तथा वर्षा जल का संचय अधिक होता है। इसके बाद 3–4 बार हैरो चलाना काफी होता है। बुवाई से पहले खेत में पाटा लगाते हैं ताकि खेत समतल हो जाए। उत्तरी भारत में कपास की खेती मुख्यतः सिंचाई आधारित होती है। इन क्षेत्रों में खेत की तैयारी के लिए एक सिंचाई कर 1–2 गहरी जुताई करनी चाहिए तथा इसके बाद 3–4 हल्की जुताई कर, पाटा लगाकर बुवाई करनी चाहिए। कपास का खेत तैयार करते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि खेत पूर्णतया समतल हो ताकि मृदा की जलधारण तथा जलनिकास क्षमता दोनों अच्छे हों। यदि खेतों में खरपतवारों की ज्यादा समस्या न हो तो बिना जुताई अथवा न्यूनतम जुताई से भी कपास की खेती की जा सकती है।

बुवाई

संपूर्ण उत्तरी भारत, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, गुजरात एवं आंध्र प्रदेश के कुछ भागों में यह खरीफ के मौसम में बोई जाती है। वर्षा आधारित क्षेत्रों में इसकी बुवाई जून–जुलाई में करते हैं। जिन क्षेत्रों में सिंचाई की सुविधा है वहां इसकी बुवाई अप्रैल में ही शुरू की जा सकती है। अमेरिकी जातियों की बुवाई देशी जातियों से कुछ पहले की जाती है। उत्तर प्रदेश, पंजाब तथा हरियाणा में इसकी बुवाई आमतौर पर गेहूं की कटाई के बाद अप्रैल–मई में की जाती है। अप्रैल–मई में बुवाई करना अधिक

लाभकर रहता है। दक्षिणी राज्यों कर्नाटक, तमिलनाडु और आंध्र प्रदेश के कुछ भागों में इसकी बुवाई अगस्त–सितम्बर में की जाती है।

कपास की बुवाई के लिए बीज को पंक्तियों में बोना सदैव अच्छा रहता है। पंक्तियों में बुवाई के लिए या तो देशी हल के पीछे कूंड में बीज डालते हैं या फिर सीड ड्रिल से बीज बोया जाता है। कपास की बुवाई उठी हुई क्यारियों में करने से अधिक पैदावार मिलती है। इसके लिए 70 सें.मी. या 140 सें.मी. की उठी हुई क्यारियां बनाते हैं। कपास की बुवाई उठी हुई क्यारियों में एक या दो पंक्तियों में करते हैं तथा सिंचाई कूंड में करते हैं। यही कूंड अधिक वर्षा होने पर जल निकासी के काम आते हैं।

सारणी 2. बीज की मात्रा एवं पौधों की दूरी का विवरण सारणी 2 में दिया गया है।

बीज मात्रा एवं पौधों में दूरी

विवरण	बीज मात्रा (कि.ग्रा./है.)	पौधों में दूरी (सें.मी.)	
		हल्की मृदा	भारी मृदा
वर्षा आधारित			
देशी	15–16	45 × 30	60 × 30
अमेरिकन	15–20	60 × 30	75 × 30
संकर	2–2.5	90 × 45	100 × 45
सिंचित			
अमेरिकन	15–20	67.5 × 30	60 × 30
संकर	2–2.5	90 × 60	100 × 60
बी.टी. संकर	1.5–2.0	90 × 60	100 × 60

बीज का उपचार

बोने से पहले बीजों को थोड़े से गोबर और राख या गीली मिट्टी से रगड़ देते हैं जिससे उनका रूआं (फज) नष्ट हो जाता है और वे आपस में चिपकते नहीं हैं। इससे बीज बोने में सुविधा रहती है। बीजों के रूएं अम्लीय उपचार से भी नष्ट किए जा सकते हैं। इसके लिए मिट्टी के बर्तन में 1 कि.ग्रा. कपास का बीज लेकर उसमें 100 मि.ली. सांन्द्रित सल्फ्युरिक अम्ल डालकर लकड़ी या कांच की छड़ से अच्छी तरह 2–3 मिनट के लिए हिलाते हैं। ऐसा करने से कपास के बीज के पूरे रूएं नष्ट हो जाते हैं। इसके बाद इसमें साफ पानी डालकर बीजों को 2–3 बार अच्छी तरह धोते हैं। इसके बाद बीजों को कैल्शियम कार्बोनेट के घोल (12.5 ग्रा. सोडियम कार्बोनेट + 2.5 लीटर पानी) में डूबो कर निकाल लेते हैं, इससे बीज में अम्लीय प्रभाव नष्ट हो जाता है। इसके बाद बीज को 1–2 बार अच्छी तरह से धोते हैं तथा हल्के, छोटे और कटे हुए बीजों को सावधानीपूर्वक निकाल देना चाहिए। भारी बीजों को आसानी से अलग छांटा जा सकता है। एक कनस्तर पानी में लगभग 1.5 कि.ग्रा. नमक डालकर उसमें बीज डाले जाते हैं जो बीज तैरकर ऊपर आ जाते हैं, वे हल्के और घटिया गुणवत्ता के होते हैं। उन्हें अलग करके पशुओं को खिलाने के काम में लाया जा सकता है। जो बीज भारी होने के कारण नीचे बैठ जाते हैं, केवल उन्हें ही बोने के प्रयोग में लेना चाहिए। गीले बीजों को शीघ्र ही बो देना चाहिए और यदि 2–4 दिन बाद बिजाई करनी हो तो छाया में सुखाने के बाद ही रखना चाहिए।

यह देख लेना चाहिए कि बीज को कोई कीट या रोग न लगा हो। एक गुलाबी रंग का कीट कपास के बीजों को भीतर से खाता है। यह प्रायः दो बीजों को जोड़ देता है। इस प्रकार के जुड़े बीजों को देखकर समझ लेना चाहिए कि गुलाबी कीट लगा हुआ है। ऐसे बीजों को चुनकर जला देना चाहिए। बीज जनित रोगों से बचाव के लिए 0.5 ग्राम एमी सन और 0.25 ग्राम स्ट्रेप्टोसाइक्लिंन 1 लीटर पानी में मिलाकर एक कि.ग्रा. बीज को 2–4 घण्टे के लिए भिगो कर उपचारित करें। उगने की क्षमता बढ़ाने के लिए 0.5 ग्राम सकसीनिक अम्ल को 5 लीटर पानी में डालकर उपचारित करें। कपास को जैसिड से बचाव के लिए इमीडाक्लोप्रिड 5 ग्राम/कि.ग्रा. बीज एवं थायोमैथोक्साम 3 ग्राम/कि.ग्रा. बीज के हिसाब से उपचारित करना लाभदायक रहता है।

अंतरण क्रियाएं

कपास काफी फैलने वाली तथा बढ़ोत्तरी वाली फसल है। पौधे गिरने से पैदावार कम हो जाती है तथा गुणवत्ता का भी ह्रास होता है। कपास गिरने से जड़ों को भारी नुकसान पहुंचता है। उनके द्वारा पोषक तत्वों का अवशोषण कम हो जाता है जिससे बढ़वार रूक जाती है। अतः यह आवश्यक है कि कपास को सीधा खड़ा रखा जाए। इसके लिए कपास के पौधे के दोनों तरफ से मिट्टी चढ़ाई जाती है। मिट्टी चढ़ाने का कार्य फसल जब 60 दिन के लगभग हो जाए, पूरा कर लेना चाहिए। यह क्रिया देशी हल, मेंड़ बनाने वाले यंत्र तथा कसौले से की जा सकती है। ऐसा करने से मिट्टी चढ़ने के साथ–साथ खरपतवार भी नष्ट हो जाते हैं।

कपास की रोपाई

इसके लिए पौध 4''× 6'' पॉलीथीन थैलियों में तैयार करते हैं। पॉलीथीन थैलियों में गोबर की खाद तथा मिट्टी 1:1 के अनुपात में भरते हैं। एक थैली में 2–3 बीज डालकर आवश्यकतानुसार पानी देते हैं। पौध रोपाई के लिए 3 सप्ताह में तैयार हो जाती है। यह विधि जहां पौधे मर जाते हैं (गैप फिलिंग), उनकी जगह लगाने के लिए उपयुक्त है।

पोषक तत्व प्रबंधन

कपास की कम पैदावार का एक मुख्य कारण मिट्टी की उर्वरता का कम होना है। जहां पर उचित मात्रा में उर्वरकों का प्रयोग किया गया है, वहां काफी अच्छी पैदावार मिलती है। एक हेक्टेयर असिंचित फसल भूमि से लगभग 80 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 30 कि.ग्रा. फास्फोरस और 30 कि.ग्रा. पोटाश लेती है। सिंचित फसल इससे लगभग 2–3 गुणा अधिक पोषक तत्व लेती हैं। पोषक तत्व प्रबंधन के लिए सिंचित क्षेत्रों में प्रति हेक्टेयर 10–12 टन (5–6 टन असिंचित क्षेत्रों में) अच्छी सड़ी हुई गोबर की खाद बुवाई के 3–4 सप्ताह पहले खेत में डालकर, एक हल्की जुताई करनी चाहिए। नाइट्रोजन, फास्फोरस तथा पोटाश की मात्रा निम्न प्रकार से डालें–

वर्षा आधारित देशी कपास : 40 कि.ग्रा. नाइट्रोजन + 20 कि.ग्रा. फास्फोरस प्रति है.,
वर्षा आधारित अमेरिकन कपास : 60 कि.ग्रा. नाइट्रोजन + 30 कि.ग्रा. फास्फोरस + 30 कि.ग्रा. पोटाश प्रति है.,
वर्षा आधारित संकर कपास : 90 कि.ग्रा. नाइट्रोजन + 45 कि.ग्रा. फास्फोरस + 45 कि.ग्रा. पोटाश प्रति है.,
सिंचित अमेरिकन कपास : 120 कि.ग्रा. नाइट्रोजन + 60 कि.ग्रा. फास्फोरस + 60 कि.ग्रा. पोटाश प्रति है., तथा
सिंचित संकर कपास :150 कि.ग्रा. नाइट्रोजन + 75 कि.ग्रा. फास्फोरस + 75 कि.ग्रा. पोटाश प्रति है.।

कपास में नाइट्रोजन, फास्फोरस एवं पोटाश डालने का अनुपात 2:1:1 उपयुक्त रहता है। फास्फोरस तथा पोटाश की पूरी मात्रा को खेत में अंतिम जुताई से पहले डाल देना चाहिए। नाइट्रोजन की आधी मात्रा बुवाई से पहले तथा आधी मात्रा को 1 या 2 बार में देना चाहिए। खड़ी फसल में नाइट्रोजन खाद फसल बोने के 60–70 दिन बाद या कलियां निकलने से पहले तथा फूल आते समय देना चाहिए। सिंचित संकर फसल में नाइट्रोजन चार बार बराबर मात्रा में बोने के समय, 30, 60 और 90 दिन बोने के बाद देनी चाहिए। नाइट्रोजन डालते समय भूमि में उचित मात्रा में नमी रहना आवश्यक है। अधिक पैदावार के लिए 2 प्रतिशत पोटेशियम नाइट्रेट का एक सप्ताह के अन्तराल पर दो छिड़काव फूल आते समय करना लाभदायक रहता है। 20 कि.ग्रा. सल्फर प्रति हेक्टेयर देना भी फसल के लिए अच्छा रहता है। जिंक की कमी वाली भूमि में 25 कि.ग्रा. जिंक सल्फेट प्रति हेक्टेयर अथवा 0.5 प्रतिशत जिंक सल्फेट का पर्णीय छिड़काव करने की तथा बोरोन के लिए 5 कि.ग्रा. बौरेक्स प्रति हेक्टेयर की दर से डालने की सिफारिश की जाती है।

जल प्रबंधन

भारत में कपास की कम पैदावार होने का एक मुख्य कारण सिंचाई की कमी है। कपास के अंतर्गत कुल क्षेत्रफल का केवल 35 प्रतिशत भाग ही सिंचित है। शेष सारा क्षेत्र वर्षाधीन है, जहां आमतौर पर समय पर वर्षा न होने से फसल को काफी हानि होती है। सिंचाई की सुविधाएं पंजाब, हरियाणा, उत्तर प्रदेश, राजस्थान के गंगानगर जिला और तमिलनाडु तथा कर्नाटक राज्यों के कुछ भागों में ही सुलभ हैं। गुजरात व महाराष्ट्र में जहां कपास सबसे अधिक उगाई जाती है, अधिकतर क्षेत्र असिंचित है।

फसल के बोने से पहले पलेवा करें। पलेवे के लिए गहरी सिंचाई की जाती है ताकि बीजों के अंकुरण के लिए भूमि में पर्याप्त नमी उपलब्ध रहे। यदि अंकुरण ठीक न हो तो 8–10 दिन बाद ही सिंचाई कर दी जाती है, अन्यथा पहली सिंचाई 3–4 सप्ताह बाद की जाती है। पहली सिंचाई हल्की देनी चाहिए क्योंकि उस समय पौधे छोटे होते हैं और उनकी जड़ें अधिक गहरी नहीं होती। इसके बाद वर्षा न होने पर 3–4 सप्ताह के अन्तराल पर पानी देना चाहिए। कपास की अच्छी पैदावार के लिए फूल आते समय तथा फल बनते समय नमी की पर्याप्त मात्रा होनी चाहिए, अन्यथा फल झड़ जाते हैं। अगर फूल बनते समय पौधे की अधिक वानस्पतिक बढ़वार हो रही हो तो पानी का नियंत्रण सही तरीके से करना चाहिए ताकि फूल अधिक लगें। सामान्यतः कपास को 700–1300 मि.मी. पानी की आवश्यकता पड़ती है। देशी कपास के लिए अन्तिम सिंचाई सितम्बर में और अमेरिकन कपास के लिए अक्टूबर में करनी चाहिए। इसके बाद सिंचाई करने से पौधों की वानस्पतिक बढ़वार को प्रोत्साहन मिलता है और फसल देर से पकती है। कपास का पौधा जल भराव के लिए अतिसंवेदनशील है, अतः उचित जल निकास की व्यवस्था करनी चाहिए।

खरपतवार प्रबंधन

पहली या दूसरी सिंचाई के बाद पहली निराई खुरपी से की जा सकती है। दूसरी निराई खुरपी, कसौला या देशी हल से की जा सकती है। असिंचित क्षेत्रों में कई बार निराई की जाती है, ताकि भूमि में नमी बनाए रखी जा सके। दक्षिणी भारत के असिंचित क्षेत्रों में चार–पांच बार तक निराइयां की जाती

हैं। शाकनाशियों के प्रयोग द्वारा भी खरपतवारों का नियंत्रण किया जा सकता है। कपास की फसल को प्रथम 8 सप्ताह तक खरपतवारों से मुक्त रखना बहुत आवश्यक है। पेंडिमेथालिन 1 कि.ग्रा./है. बुवाई के बाद परंतु फ्लूक्लोरेलिन और ट्राइफ्लोरालिन की 1 कि.ग्रा. सक्रिय अवयव प्रति हेक्टेयर की दर से अंकुरण से पहले छिड़काव करें। कपास में कतार से कतार की दूरी अधिक होती है अतः इसमें खरपतवार नष्ट करने के लिए ग्लाइफोसेट 2.0–2.5 कि.ग्रा. सक्रिय अवयव प्रति हेक्टेयर की दर से 250–300 लीटर पानी में घोल बनाकर फसल को बचाते हुए सीधे छिड़काव करने से खरपतवार नष्ट हो जाते हैं तथा एक सिंचाई कम करनी पड़ती है। छिड़काव में यह ध्यान रखना चाहिए कि फसल पर खरपतवारनाशी हवा से भी न जाएं। इसलिए यह छिड़काव तब करना चाहिए जब हवा न चले।

कीट प्रबंधन

कपास में मुख्य रूप से फल छेदक, रस चूसने वाले तथा पत्ती–लपेटने वाले कीट हानि पहुंचाते हैं।

कपास का पत्ती लपेटने वाला कीट

इसकी इल्लियां पत्तियों को लपेटकर एक खोल सा बना लेती हैं और अन्दर पत्तियों को खाती हैं। फसल को इससे बचाने के लिए (1) गर्मियों में गहरी जुताई करें ताकि प्युपा धूप से नष्ट हो जाएं; (2) इसके लार्वा को एकत्रित करके नष्ट कर देना चाहिए; (3) फसल पर पत्ती लपेटने वाले कीट दिखाई देने पर अण्डा पैरासिटोइड–ट्राइकोग्रामा 1.5 लाख प्रति हेक्टेयर की दर से खेत में प्रयोग करना चाहिए; (4) फसल पर कीट का प्रकोप दिखाई देने पर एण्डोसल्फान 35 ई सी 1500–2000 मि.ली./हेक्टेयर सक्रिय तत्व से छिड़काव करने से इसके प्रकोप से बचा जा सकता है।

फल छेदक (बोल वर्म)

कपास में अमेरिकन बोल वर्म, पिंक बोल वर्म तथा स्पोटेड बोल वर्म फसल को बहुत हानि पहुंचाते हैं। बोल वर्म के नियंत्रण के लिए निम्न उपाय हैं–

समेकित कीट प्रबंधन

- गर्मी के मौसम में गहरी जुताई करने से जमीन में शीतनिद्रा में पड़े कीटों की इल्लियां एवं प्युपा बाहर आ जाते हैं और मर जाते हैं।
- खरपतवार मुक्त खेती करना एवं कपास की अंतिम तुड़ाई के बाद बचे अवशेषों को नष्ट कर देना चाहिए।
- समय पर एक साथ अच्छी प्रजाति की बुवाई करें तथा विलम्ब से फसल की बुवाई कभी भी नहीं करनी चाहिए।
- कपास की 9–10 लाइनों के बीच में सेटारिया की एक लाइन लगाने/चिड़ियों के बैठने के लिए सीधे पर्चिज लगाने से परभक्षी आते हैं और इल्लियों को खाते हैं।
- बीज बुवाई से पूर्व इमीडाक्लोप्रिड से 7.5 ग्रा. प्रति कि.ग्रा. की दर से उपचारित कर लेना चाहिए।

- कीट प्रपंच फास (ट्रेप) अलग–अलग प्रजातियों के लिए फसल उगने के 21 दिन बाद कपास की फसल में लगाने चाहिए। तीनों बॉल वर्मों के लिए अलग–अलग 3 ट्रेप/हेक्टेयर कीटों की निगरानी करने के लिए तथा ट्रेप में लगे ल्युस को 20 दिनों में बदलते रहना चाहिए।
- ट्रेपों को फसल की ऊंचाई से 30 सें.मी. ऊपर रखना चाहिए।
- एक प्रकाश प्रपंच प्रति हैक्टर की दर से लगाना चाहिए।
- फसल के 45 तथा 55 दिनों के होने पर नीम सीड कर्नल निलंबन (5 प्रतिशत) का छिड़काव करना चाहिए।
- फसल 15 दिन की होने पर अण्डा परजीवी कीट, *ट्राइकोग्राम कोइलोनिस* की 1.5 लाख/है. एक सप्ताह के अंतर से दो बार छोड़ना चाहिए।
- अमेरिकन बॉल वर्म से फसल प्रभावित होने पर एन.पी.वी. की 250 एल.ई.मात्रा/है. की दर से छिड़काव करना चाहिए (15 दिनों के अंतर से छिड़काव करना) तथा बी टी नुस्खे की मात्रा 1.5 कि.ग्रा./है. का भी छिड़काव करना चाहिए।
- तम्बाकू कैटरपिलर के लिए स्पोडोप्टेरा एन.पी.वी. की मात्रा 250 एल ई/है. का प्रभावित फसल पर छिड़काव करना चाहिए।
- आवश्यकता के अनुसार ही कीटनाशकों का प्रयोग करना चाहिए जैसे क्लोरोपाइरीफॉस, प्रोफेनोफास, ट्राइजोफास की संतुति के हिसाब से ही प्रयोग करना चाहिए।
- तम्बाकू कैटरपिलर के अण्डों का अधिक संख्या में इकट्ठा करके नष्ट करना चाहिए।
- परभक्षी कीट क्राइसोपरला कारनिया को 50,000 प्रति है. की दर से खड़ी फसल में छोड़ना चाहिए।
- गुलाबी कपास के कीट से बचाव के लिए, फसल खत्म होने के बाद सभी प्रकार के फसल अवशेषों को जला देना चाहिए। कपास की पेढ़ी (रेटुनिंग) फसल नहीं लेनी चाहिए। कपास के बीज को ठीक से खुली धूप में सुखाएं तथा मशीन द्वारा बीज की 60^0 से. पर गर्म करने से दो बीज अवस्था में पनप रही इल्लियां खत्म हो जाती हैं।
- नीम आधारित कीटनाशी का प्रयोग करना चाहिए जैसे 5 प्रतिशत नीम बीज गिरी निचोड़ (एन एस के) या व्यावसायिक निरूपण नुस्खों की 750–1000 मि.ली./है. की दर से 45 दिन की अवस्था पर कीटों की आर्थिक क्षति स्तर पर छिड़काव करना चाहिए।

कपास का गुलाबी कीट

इस कीट की इल्लियां खेतों से ही कपास के गोदाम तक आ जाती हैं तथा दो बिनौलों के बीच में छिपकर उन्हें खाती हैं। जिस फसल में इनका प्रकोप हो उसको साफ फर्श पर मई–जून की धूप में कुछ दिनों के लिए सुखा लेना चाहिए या कपास को साइमन काटन–सीड हीटर में 60^0 से. तापमान पर सुखा लेना चाहिए। गोदाम में इसके प्रभाव से बचने के लिए 450 ग्राम मिथाइल ब्रोमाइड का प्रति हजार घन फुट स्थान के हिसाब से धूमन करना चाहिए।

रोग प्रबंधन

कपास के पौधों पर कई रोगों का प्रकोप होता है जिनमें से मुख्य मूल–विगलन और म्लानि या उकठा रोग है। इनके अलावा और भी बहुत से कवक, जीवाणु तथा विषाणु–जनित रोग कपास में लगते हैं। कुछ मुख्य रोगों का नियंत्रण निम्न प्रकार से है–

1. **मूल–विगलन** : इस रोग में पौधों की जड़ सड़ जाती है और छाल के नीचे पीला सा पदार्थ जमा हो जाता है। इस रोग से बचने के लिए अगेती बुवाई करनी चाहिए। कपास की फसल के साथ मोठ की फसल बोने से इस रोग का प्रकोप कम होता है। वीटावेक्स 0.1 प्रतिशत और ब्लाईटोक्स 0.3 प्रतिशत प्रति कि.ग्रा. बीज के हिसाब से बीज को उपचारित करना चाहिए।

2. **म्लानि (उक्ठा)** : इस रोग की रोकथाम के लिए रोगरोधी किस्मों का बीज ही बोना चाहिए। कपास के बीजों को बुवाई से पहले थिरम 3 ग्राम प्रति कि.ग्रा. बीज के हिसाब से उपचारित करें। खेत में ऐक्टिनोमाइसिटीज के जीवाणु को मिट्टी में मिलाने पर 30–35 प्रतिशत म्लानि कम हो जाती है।

3. **कृष्ण शाखा रोग** : यदि बोने से पहले स्ट्रेप्टोमाइसिन से बीज का उपचार कर लिया जाए तो यह रोग आरम्भिक अवस्था में ही रोका जा सकता है। यदि पौधों पर रोग के लक्षण पाए जाएं तो पर 0.02 प्रतिशत ऐग्रोमाइसिन रसायन के घोल के छिड़काव से रोग को बढ़ने से रोका जा सकता है।

4. **पत्ती मरोड़ विषाणु रोग** : यह रोग एक विषाणु जनक रोग है जो कि सफेद मक्खी द्वारा फैलता है। इसके लिए रोग प्रतिरोधी किस्मों का प्रयोग करना चाहिए।

चुनाई

कपास में फूल काफी लम्बी अवधि तक आते हैं। सभी पौधों पर फूल एक साथ नहीं आते और प्रत्येक पौधे पर भी सारे फूल एक साथ नहीं आते हैं। फसल बोने के दो–ढ़ाई महीने बाद फूल खिलने शुरू हो जाते हैं। फूलों के साथ न खिलने के कारण कपास की चुनाई काफी समय तक चलती रहती है। जब काफी संख्या में गूले पक जाएं तो पहली चुनाई की जाती है। उसके बाद दोबारा जब कुछ और गूले पक जाएं तो उन्हें चुन लिया जाता है। इस प्रकार चुनाई कई बार करनी पड़ती है। आमतौर पर 3–4 बार चुनाई करते हैं। चुनाई कितनी बार करनी होगी, यह कपास किस्म, वर्षा एवं पंक्तियों की दूरी आदि पर निर्भर करता है। उत्तरी भारत में सिंचित फसल की चुनाई अक्तूबर से नवम्बर तक होती है तथा असिंचित फसल अक्तूबर से दिसम्बर तक चुनी जाती है।

उपज

बी.टी. कपास के पहले असिंचित फसल की उपज 8–10 क्विंटल/हेक्टेयर तथा संकर किस्मों की उपज 10–15 क्विंटल तक होती थी। सिंचित संकर उपज की औसत उपज 20–25 क्विंटल/हेक्टेयर हो सकती है। बी टी कपास की पैदावार उपयुक्त जलवायु के क्षेत्रों में 50 क्विंटल/हेक्टेयर तक आंकी गई है।

चारा ज्वार

जलवायु

ज्वार एक गर्म मौसम वाली फसल है लेकिन विभिन्न तापमानों पर इसकी खेती सफलतापूर्वक की जा सकती है। ज्वार की अच्छी वृद्धि के लिए 26 से 30^0 से. तापमान उपयुक्त होता है। यह फसल कम नमी तथा सूखा के लिए सहनशील होती है। अनुकूल नमी व तामपान होने पर तीव्र गति से बढ़ती है। यह समुद्र तल से 1500 मी. की ऊंचाई तक सफलतापूर्वक उगाई जा सकती है। इसकी खेती 60 से 100 सें.मी. वर्षा वाले क्षेत्रों में की जाती है। अन्य फसलों की तुलना में यह फसल जल भराव की अवस्था को भी आसानी से सहन कर लेती है। चारे के लिए इस फसल को ग्रीष्म एवं वर्षा दोनों ही ऋतुओं में उगाया जाता है।

मृदा

ज्वार की खेती लगभग सभी प्रकार की मृदाओं में की जा सकती है किंतु क्षारीय या अम्लीय मृदाओं में इसका जमाव कम होने से उपज में भारी कमी आती है। बलुई दोमट तथा दोमट भूमियां इसके लिए सबसे अच्छी होती हैं। जल निकास की उचित व्यवस्था होने पर काली तथा भारी मृदा में यह अच्छी उपज देती है, लेकिन अत्यंत हल्की बलुई मृदाओं में इसकी बढ़वार अच्छी नहीं होती। इसकी खेती के लिए भूमि का पी एच मान 6.7 से 7.5 तक अच्छा रहता है।

फसल चक्र

ज्वार को ग्रीष्म ऋतु में आलू, सरसों, चना, मसूर आदि फसलों के बाद बोते हैं। खरीफ में ज्वार को रबी एवं ग्रीष्म फसलों के बाद मानसून की वर्षा प्रारंभ होने पर बोया जाता है। ज्वार को प्रायः अकेली फसल के रूप में बोया जाता है लेकिन चारे की गुणवत्ता बढ़ाने के लिए इसको मिश्रित रूप में लोबिया, ग्वार, उड़द, मूंग, अरहर, सनई आदि के साथ बोते हैं। मिश्रित फसल के रूप में बोने पर अपेक्षाकृत कम शुष्क पदार्थ मिलता है लेकिन प्रोटीन की मात्रा ज्यादा प्राप्त होती है।

उन्नत किस्में

विभिन्न क्षेत्रों के लिए हमारे देश में विभिन्न उन्नतशील किस्में विकसित की गई हैं। अधिकतर ग्रीष्मकालीन (अप्रैल–जून) में बहु–कटाई वाली ज्वार लगाई जाती है। इससे गर्मियों तथा वर्षा ऋतु में लगातार हरा चारा मिलता रहता है। सघन खेती वाले क्षेत्रों में कम अवधि (60–70 दिन) की फसल उत्तम होती है। इनसे मुख्य किस्में इस प्रकार हैं–

एक कटाई के लिए उपयुक्त किस्में

यू पी चरी–1 व 2	:	उत्तर प्रदेश के लिए उपयुक्त
पूसा चरी–6 व 9	:	सम्पूर्ण उत्तरी क्षेत्र
हरियाणा चरी–136 व 260	:	सम्पूर्ण देश
राजस्थान चरी –1 व 2	:	सम्पूर्ण उत्तरी–पश्चिमी क्षेत्र

दो कटाई वाली किस्में

एम पी चरी	:	सम्पूर्ण देश हेतु
जवाहर चरी–69	:	मध्य प्रदेश के लिए

बहु कटाई वाली किस्में

पूसा चरी 615, पूसा चरी हाइब्रिड 109 : राजधानी क्षेत्र

पूसा चरी–23, मीठी सूडान (एस एस जी 59–3), हरा सोना, प्रो एग्रो चरी, पूसा चरी हाइब्रिड 106 (एस एस जी–998), एम एफ एच–3 : सम्पूर्ण देश के लिए

द्विउद्देश्य – चारा एवं दाने हेतु

सी एस वी–15, सी एस एच–13 : उत्तरी–पश्चिमी एवं मध्य क्षेत्रों के लिए उपयुक्त

खेत की तैयारी

खेत की तैयारी के लिए एक जुताई हल द्वारा तथा 2 से 3 जुताइयां कल्टीवेटर या हैरो द्वारा पर्याप्त होती हैं। खेत खरपतवार रहित तथा समतल होना चाहिए तथा अच्छे जमाव के लिए नमी का स्तर समुचित हो। लम्बे समय तक जल भराव की दशा में फसल पर विपरीत प्रभाव पड़ता है, अतः जल निकास का उचित प्रबंध होना चाहिए।

बुवाई

ज्वार की बुवाई ग्रीष्म ऋतु की फसल के लिए फरवरी के अंतिम सप्ताह से मार्च के आरंभ तक सरसों, मटर, चना, जौ, आलू आदि के बाद की जाती है। उत्तर भारत में इसकी बुवाई का उचित समय मार्च का प्रथम पखवाड़ा है। खरीफ की फसल की बुवाई जुलाई के प्रथम पखवाड़े में उत्तम रहती है।

छोटे बीज वाली किस्में जैसे सूडान चरी, एम पी चरी के लिए 30 से 40 कि.ग्रा. बीज/है. पर्याप्त रहता है लेकिन बड़े दानों वाली प्रजातियां जैसे पूसा चरी 1 व 6, हरियाणा चरी–136 तथा कुछ संकर किस्मों के लिए 40 से 50 कि.ग्रा. बीज/है. की आवश्यकता होती है। बीज की अंकुरण क्षमता कम होने पर उसी अनुपात में बीज दर बढ़ा देनी चाहिए तथा मिलवां फसल में अन्य फसल के अनुपात में बीज दर घटाई जा सकती है।

बीज को प्रमाणित संस्थाओं से ही लेना चाहिए तथा यदि अपने खेत या किसी अन्य के खेत का बीज प्रयोग करना हो तो उसको 0.25 प्रतिशत थिरम या 0.1 प्रतिशत बाविस्टिन अथवा 0.25 प्रतिशत एग्रोसन जीएन से उपचारित करें। अच्छी उपज प्राप्त करने तथा कटाई में आसानी के लिए फसल को छिटकवां न बोकर पंक्तियों में बोना चाहिए। चारे के लिए पंक्ति से पंक्ति के बीच की दूरी 25–30 सें.मी. तथा पौधे से पौधे की दूरी 8–10 सें.मी. उचित होती है। छोटे बीजों को 1.5 से 2.0 सें.मी. तथा बड़े बीजों को 2–3 सें.मी. गहरा बोना चाहिए। ज्यादा उथला या ज्यादा गहरा बोने से अंकुरण कम होता है।

पोषक तत्व प्रबंधन

खाद एवं उर्वरकों की मात्रा एक एवं बहु–कटाई वाली ज्वार के लिए अलग–अलग होती है। साधारणतया 70–80 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 50–60 कि.ग्रा. फास्फोरस तथा 40 कि.ग्रा./हेक्टेयर पोटाश की आवश्यकता होती है। एकल कटाई वाली ज्वार के लिए नाइट्रोजन की आधी तथा फास्फोरस एवं पोटाश की पूरी मात्रा बोने के समय तथा शेष नाइट्रोजन लगभग 30 दिन बाद देते हैं। बहु कटाई वाली ज्वार में लगभग 30 कि.ग्रा. नाइट्रोजन प्रत्येक कटाई के बाद देना चाहिए। जस्ते की कमी वाले क्षेत्रों में 10–20 कि.ग्रा./है. जिंक सल्फेट बोने के समय देना चाहिए। यदि गोबर की खाद उपलब्ध हो तो इसकी 10–15 टन मात्रा फसल बोने से पहले प्रयोग करनी चाहिए।

जल प्रबंधन

खरीफ में बोई गई फसल में सिंचाई की आवश्यकता नहीं होती है लेकिन 3 सप्ताह से ज्यादा वर्षा न होने पर एक सिंचाई करनी चाहिए। ग्रीष्म ऋतु की ज्वार के लिए 5–7 सिंचाइयों की आवश्यकता होती है। सिंचाई गर्मी तथा वाष्पोत्सर्जन के अनुसार 10–15 दिन के अन्तराल पर करनी चाहिए। अधिक वर्षा होने पर जल निकास की व्यवस्था करनी चाहिए।

खरपतवार प्रबंधन

ग्रीष्मकालीन ज्वार में खरपतवार कम उगते हैं लेकिन वर्षाकालीन फसल में इनका प्रकोप अधिक होता है। अतः फसल बोने के बाद एवं जमाव से पहले 1.0 कि.ग्रा. एट्राजीन को 800 लीटर पानी में घोल बनाकर प्रति हेक्टेयर की दर से छिड़काव करना चाहिए। फसल उगने के बाद 1.0 कि.ग्रा. 2,4–डी को 800 लीटर पानी में घोलकर प्रति हेक्टेयर की दर से छिड़काव करने पर चौड़ी पत्ती वाले खरपतवार नियंत्रित होते हैं। दलहनी फसल के साथ बोई गई ज्वार में निराई–गुड़ाई करना लाभप्रद रहता है।

रोग एवं कीट प्रबंधन

ज्वार में विभिन्न प्रकार के कीड़े–मकोड़े तथा बीमारियों का प्रकोप होता है। बीमारियों में एन्थ्रेक्नोस, धारी रोग तथा पत्ती का धब्बा रोग प्रमुख हैं। कीटों में तना मक्खी, तना छेदक कीट, गाल

मिज प्रमुख हैं। तना मक्खी एवं तना छेदक कीट को 125 मि.ली./है. कार्बोफ्युरॉन मैलाथियान से तथा गाल मिज को 0.075 प्रतिशत मोनोक्रोटोफास से नियंत्रित किया जा सकता है। सभी प्रकार की बीमारियों से बचाव हेतु 3 ग्रा./कि.ग्रा. बीज को थिरम द्वारा शोधित करना चाहिए। एन्थ्रेक्नोज के लिए कार्बेन्डाजिम का 5 ग्रा./ली. के घोल का छिड़काव प्रारंभिक अवस्था में प्रभावी होता है।

कटाई

चारे वाली फसल की कटाई उनकी वानस्पतिक वृद्धि एवं पौष्टिकता पर निर्भर करती है। उत्तम गुणवत्ता हेतु फसल की कटाई 50 प्रतिशत फूल आने पर करनी चाहिए। फूल वाली अवस्था में काटने पर एच सी एन की मात्रा 100 पी पी एम से कम होती है, जोकि पशुओं के लिए सुरक्षित होती है। कम पानी वाली परिस्थितियों में ज्वार में एच सी एन की अधिकता होती है, अतः कम अवधि का तथा सूखाग्रस्त खेत का ज्वार पशुओं को नहीं देना चाहिए। बहु–कटाई वाली फसल में कटाई के समय ठूंठ को 10–15 सें.मी. छोड़ देना चाहिए। इन किस्मों की कटाई प्रथम 50 से 60 दिन पर तथा उसके बाद 40 दिन के अंतर पर करनी चाहिए।

उपज

उचित प्रबंधन अपनाकर एकल कटाई वाली ज्वार से 300 से 400 क्विंटल तथा बहु–कटाई वाली ज्वार से लगभग 400 से 700 क्विंटल हरा चारा प्रति हेक्टेयर प्राप्त किया जा सकता है।

चारा बाजरा

जलवायु

बाजरा की खेती विस्तृत रूप से विभिन्न क्षेत्रों में की जाती है। यह फसल विभिन्न तापमानों, प्रकाश अवधियों एवं मृदा नमी स्तरों में सफलतापूर्वक उगाई जा सकती है। गर्म मौसम तथा 40–75 सें.मी. वार्षिक वर्षा फसल के लिए उपयुक्त होती है। अच्छी बढ़वार के लिए नमीयुक्त मौसम अच्छा रहता है। इस फसल में सूखा सहने की क्षमता होती है लेकिन सिंचाई का प्रबंध होने पर उपज में भारी वृद्धि होती है। फसल की अच्छी बढ़वार हेतु 20–30^0 से. तापमान उपयुक्त रहता है। यह फसल खरीफ ऋतु में बोई जाती है लेकिन सिंचाई की व्यवस्था होने पर ग्रीष्म ऋतु में भी उगाई जाती है। पाला बाजरा के लिए हानिकारक होता है।

मृदा

अच्छे जल निकास वाली हल्की से भारी मृदाएं जिनका पी एच मान 6.5 से 7.5 हो, बाजरा के लिए उपयुक्त होती हैं। अम्लीय मृदाएं बाजरा के लिए अनुपयुक्त होती हैं। अच्छे जमाव एवं पौध संख्या के लिए समतल तथा खरपतवार रहित, अच्छे से तैयार खेत होना चाहिए। इसके लिए एक जुताई तथा दो बार हैरो चलाना चाहिए। यह फसल जल भराव के लिए संवेदनशील होती है अतः खेत में जल निकास का उचित प्रबंध आवश्यक है।

उन्नत किस्में

हरियाणा, पंजाब, गुजरात, महाराष्ट्र एवं उत्तर प्रदेश के लिए उपयुक्त किस्में :

जी एफ बी–1, फोडर कम्बू–8, माल बान्द्रो, जी–2, पूसा मोती, राज बाजरा चरी–2, यू पी एफ बी–1, टाइप–55, एस–530, ए–1/30, एफ बी सी–16 (केवल पंजाब हेतु), राजको, पी एच बी–12, एम एच–30, बी जे 105, आनन्द एस–11, के–674, के–6787, एल–74 आदि।

आन्ध्र प्रदेश, कर्नाटक एवं तमिलनाडु के लिए उपयुक्त किस्में :

ए पी एफ बी–1, बी–247, सी ओ–1, सी ओ–2, सी ओ–3, नाद कुम्बू, चुम्बू, आदि

बुवाई

ग्रीष्म ऋतु में चारे के लिए बाजरे की बुवाई का उपयुक्त समय मार्च से अप्रैल के प्रथम पखवाड़े तक रहता है। खरीफ की बुवाई वर्षा शुरू होने पर करनी चाहिए। जुलाई का प्रथम पखवाड़ा इसके बोने का उत्तम समय होता है। इस फसल को जल्दी या देर से बोने पर भी चारे की अच्छी पैदावार हो जाती है।

चारे हेतु बाजरा छिटकवां विधि से बोते हैं। इसके लिए लगभग 20–25 कि.ग्रा. बीज/हेक्टेयर की आवश्यकता होती है। इस विधि से बोने पर बीज का जमाव संतोषजनक नहीं होता है तथा उपज में भारी कमी आती है। बोने का सही तरीका सीडड्रिल होता है, इसमें बीज को 20–25 सें.मी. पर कतारों में बोते हैं। इस विधि से 8–10 कि.ग्रा. बीज प्रति हेक्टेयर पर्याप्त होता है। बाजरे का बीज छोटा होने के कारण इसकी बुवाई 2.0 से 2.5 सें.मी. गहराई पर करनी चाहिए तथा बोने से पहले बीज को थिरम से 3.0 ग्रा./कि.ग्रा. बीज की दर से शोधित करना चाहिए।

पोषक तत्व प्रबंधन

बाजरा के चारे की अधिक पैदावार लेने हेतु पोषक तत्वों का उचित प्रबंधन अनिवार्य है। इसके लिए लगभग 10 टन/है. गोबर की सड़ी हुई खाद बोने से पहले खेत में मिला दें। इससे भूमि की भौतिक दशा में सुधार के साथ–साथ गौण एवं सूक्ष्म पोषक तत्वों की पूर्ति हो जाती है। बोने से पहले 50 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 30 कि.ग्रा. फॉस्फोरस अम्ल तथा 30 कि.ग्रा. पोटाश प्रति हेक्टेयर की दर से उर्वरकों द्वारा देना चाहिए। बोने के एक माह बाद 30 कि.ग्रा. नाइट्रोजन को खड़ी फसल में पंक्तियों के बीच में बिखेरना चाहिए। बारानी क्षेत्रों में 20–30 कि.ग्रा. नाइट्रोजन प्रति हेक्टेयर की दर से बोने के 30–35 दिन बाद वर्षा होने पर देना चाहिए। यदि लम्बे समय तक वर्षा न हो तो यूरिया के 2 प्रतिशत घोल का छिड़काव बोने के 30–35 दिन बाद किया जा सकता है। ऐसे में खड़ी फसल में उर्वरक बिखेरकर देना लाभदायक नहीं होता है।

जल प्रबंधन

ग्रीष्म ऋतु में बोई गई फसल के लिए 3–4 सिंचाइयों की आवश्यकता होती है। वर्षा ऋतु में साधारणतया सिंचाई की आवश्यकता नहीं होती है लेकिन लम्बे समय तक वर्षा न होने पर 1–2 सिंचाई करने से उपज अच्छी होती है।

खरपतवार प्रबंधन

वर्षा ऋतु में बाजरा की फसल में खरपतवारों का अधिक प्रकोप होता है। खरपतवारों द्वारा फसल की 3–5 सप्ताह की अवस्था तक अधिक हानि होती है। इसलिए खरपतवारों का समय से नियंत्रण करना अनिवार्य है। 3–4 सप्ताह की अवस्था में एक बार निराई–गुड़ाई बहुत प्रभावी रहती है। फसल जमाव से पहले एट्राजीन की 0.5 कि.ग्रा. मात्रा को 600 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करने से लगभग सभी प्रकार के खरपतवार नियंत्रित हो जाते हैं। यदि फसल में लोबिया आदि का अन्तःसस्यन किया गया हो तो बोने के बाद जमाव के पहले 1 कि.ग्रा./है. की दर से एलाक्लोर का प्रयोग करना चाहिए।

कीट एवं रोग प्रबंधन

बाजरा की फसल पर विभिन्न प्रकार के कीटों एवं बीमारियों का प्रकोप होता है। अर्गट, चूर्णिल आसिता तथा स्मट बीमारियां मुख्य रूप से फसल को प्रभावित करती हैं। इसके नियंत्रण हेतु प्रतिराधी

प्रजातियां– जैसे 'एन एच बी–5', 'पी एच बी–10' या 'पी एच बी–14' किस्में बोनी चाहिए। बीमार पौधों को सावधानी से उखाड़कर भूमि में दबा देना चाहिए अथवा जला देना चाहिए। बोने से पहले बीज को एपरान–35 एस डी या रिडोमील एम जेड–72, 3.0 ग्रा./कि.ग्रा. बीज शोधित करें अथवा रिडोमिल 1000 पी पी एम का छिड़काव करने से इन बीमारियों का बेहतर नियंत्रण संभव है। अर्गट नियंत्रण के लिए 2000 पी पी एम जायराम का छिड़काव करना चाहिए। बाजरा की फसल में तना मक्खी का विशेष प्रकोप होता है। इसके नियंत्रण के लिए 125 मि.ली. कार्बोफ्युरान प्रति हेक्टेयर की दर से छिड़काव करना चाहिए।

कटाई

एक कटाई वाली किस्मों को बोने के लगभग 60–75 दिन बाद जब 50 प्रतिशत फसल में फूल आ जाएं, चारे के लिए काटना चाहिए। बहु–कटाई वाली प्रजातियों को बोने के 40–45 दिन पर प्रथम कटाई करनी चाहिए, बाद की कटाइयां 30 दिन के अन्तराल पर की जा सकती हैं। सूखी कड़वी हेतु फसल को पकने के बाद कटाई करना चाहिए तथा दाने निकालने के पश्चात् कड़वी को अच्छे से सुखाकर भंडारण करना चाहिए।

उपज

उन्नत विधियों से बाजरे की खेती से बहु–कटाई वाली किस्मों से लगभग 300 क्विंटल/हेक्टेयर हरा चारा प्राप्त होता है। एकल कटाई वाली किस्मों से 200–250 क्विंटल हरा चारा/हेक्टेयर प्राप्त होता है। इसी प्रकार दाने के लिए बोई गई फसल से लगभग 60–70 क्विंटल शुष्क कड़वी प्रति हेक्टेयर से प्राप्त की जा सकती है।